जैन लॉ [जैन कानून]

(आपके अंग्रेजी जैन लॉ का हिन्दी अनुवाद)

लेखक

स्व० श्री चम्पतराय जैन

बैरिस्टर एट लॉ विद्यावारिधि

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

प्रकाशन

प्रकाशक
श्री राजकुमार सेठी
प्रकाशन मंत्री, भारतवर्षीय दि० जैन महासभा,
प्रकाशन विभाग
डीमापुर (नागालैण्ड)

द्वितीयावृत्ति
१९८४
मूल्य : दस रुपये

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी–१०

स्व० श्री चम्पतराय जैन

बैरिस्टर एट लॉ विद्यावारिधि

प्रस्तावना

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभाके तत्त्वावधानमें दिनांक ८ जुलाई, १९८४ को पूज्य आर्यिकारत्न १०५ श्री ज्ञानमती माताजीके संघके सांनिध्य में दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुरके प्रांगणमें दिगम्बर जैन समाजकी भारतवर्षीय संविधानके अनुच्छेद २५ (बी) के संदर्भमें जैन शिक्षाविदों, श्रेष्ठियों, विधिवेत्ताओं तथा गणमान्य व्यक्तियोंकी एक साधारण किन्तु ऐतिहासिक गोष्ठी हुई। इस गोष्ठीमें सर्वसाधारण ने निर्णय लिया कि श्री स्व. चम्पतलाल जी जैन, बैरिस्टर एट लॉ, विधावारिधि, हरदोई निवासी द्वारा लिखित "जैन लॉ" (जैन कानून) पुस्तक जोकि श्री मूलचन्द किसनदास कापडिया जीके जैन विजय प्रेस, सूरत में वीर० सं० २४९५ में प्रकाशित हुई थी, को पुनः प्रकाशित किया जाय। इस प्रस्तावके क्रियान्वयन स्वरूप यह प्रस्वावना प्रकाशितकी जा रही है।

भारतवर्षमें राजनैतिक परिस्थितियोंको देखते हुए जैन जातिको अपना वैधानिक स्वरूप समझना चाहिए। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रसिद्ध इतिहासविदों तथा न्यायविदोंने यह स्वीकार किया है कि जैनधर्म भारतका प्राचीनतम धर्म है तथा जैन जातिपर "जैन लॉ" ही लागू होना चाहिए।

हमारा प्रयास है कि 'जैन ला' का अच्छा स्वरूप बनाकर समाज व शासनके सामने प्रस्तुत किया जावे। इस भावनाकी पूर्ति हेतु यह पुस्तिका भूमिकाका काम करेगी। विद्वान् पाठकगण अपनी ओरसे जितना जल्दी हो सके, जैन पुस्तकों व शास्त्रोंके आधारपर जैन कानूनकी धाराओंको संकलित कर सहयोग दें। जितना जल्दी हो सके, आप हमें अपने सुझाव भेजें।

निर्मल कुमार जैन
अध्यक्ष
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

असली ग्रंथ 'जैन-लॉ' की प्रस्तावना

जैन—लॉ एक स्वतन्त्र विभाग दाय भाग (Gurisprudence) के सिद्धान्तका है। इसके आदि रचयिता महाराजा भरत चक्रवर्ती हैं जो प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् आदिनाथ स्वामी (ऋषभदेवजी) के बड़े पुत्र थे।[1]

यह सबका सब एक-दम रचा गया था। इसलिए इसमें वह चिह्न नहीं पाये जाते हैं जो न्यायाधीशावलम्बित (Judge-made-जज मेड) नीतिमें मिला करते हैं, चाहे पश्चात् सामाजिक आवश्यकताओं एवं मानवी सम्बन्धके अनुसार उसमें किसी-किसी समयपर कुछ थोड़े बहुत ऐसे परिवर्तनोंका हो जाना असम्भव नहीं है जो उसके वास्तविक सिद्धान्तके अविरुद्ध हों। जैन नीति विज्ञान उपासकाध्ययन शास्त्रका अङ्ग था जो अब विलीन हो गया है। वर्तमान जैन-लॉ की आधारभूत अब केवल निम्नलिखित पुस्तकें हैं—

१. **भद्रबाहु संहिता**—जो श्री भद्रबाहु स्वामी श्रुतकेवलीके समयका जिन्हें लगभग २३०० वर्ष हुए न होकर बहुत काल पश्चात्का संग्रह किया हुआ ग्रन्थ जान पड़ता है तिसपर भी यह कई शताब्दियोंका पुराना है। इसकी रचना और प्रकाश सम्भवतः संवत् १६५७-१६६५ विक्रमी अथवा १६०१-१६०९ ई० के अन्तरमें होना प्रतीत होता है। यह पुस्तक उपासकाध्ययनके ऊपर निर्भरकी गई है इनके रचयिताका नाम विदित नहीं है।

२. **अर्हन्नीति**—यह श्वेताम्बरी ग्रन्थ है। इसके सम्पादकका नाम और समय इसमें नहीं दिया गया है किन्तु यह कुछ अधिक कालीन ज्ञात नहीं होता है। परन्तु इसके अन्तिम श्लोकमें सम्पादकने स्वयं यह माना है कि जैसा सुना है वैसा लिपिबद्ध किया।

३. **वर्धमान नीति**—इसका सम्पादन श्री अमितगति आचार्यने लगभग संवत् १०६८ वि० या १०११ ई० में किया है। यह राजा भुन्जके समयमें हुए थे। इसके और भद्रबाहु संहिताके कुछ श्लोक सर्वथा एक ही हैं। जैसे ३०-३४ जो भद्रबाहु संहितामें नम्बर ५५-५९ पर उल्लिखित हैं।

इससे विदित होता है कि दोनों पुस्तकोंके रचनेमें किसी प्राचीन ग्रन्थकी सहायता ली गई है। इससे इस बातका भी पता चलता है कि भद्रवाहु-संहिता

---

१. ई० जि० सं० ५३-५५।

यद्यपि वह लगभग ३२५ वर्ष की लिखी है तो भी वह एक अधिक प्राचीन ग्रन्थके आधारपर लिखी गई है जो सम्भवतः ईसवी सन् के कई शताब्दि पूर्वके सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्यके गुरु स्वामी भद्रबाहुके समयमें लिखी गई होगी, जैसा उसके नामसे विदित होता है। क्योंकि इतने बड़े ग्रन्थमें वर्द्धमान नीति जैसी छोटीसी पुस्तककी प्रतिलिपि किया जाना समुचित प्रतीत नहीं होता है।

४. **इन्द्रनन्दी जिन संहिता**—इसके रचयिता वसुनन्दि इन्द्रनन्दि स्वामी हैं। यह पुस्तक भी उपासकाध्ययन अंगपर निर्भर है। विदित रहे कि उपासकाध्ययन अंग[1] लोप हो गया है और अब केवल इसके कुछ उपाङ्ग अवशेष हैं।

५. **त्रिवर्णाचार**—संवत् १६६७ वि० के मुताबिक १६११ ई० की बनी हुई पुस्तक है। इसके रचयिया भट्टारक सोमसेन स्वामी हैं जो मूल संघकी शाखा पुष्कर गच्छके पट्टाधीश थे। इनका ठीक स्थान विदित नहीं है।

६. **श्री आदिपुराणजी**—यह ग्रन्थ भगवज्जिनसेनाचार्यकृत है जो ईस्वी सन्की नवीं शताब्दीमें हुए हैं जिसको अब लगभग १२०० वर्ष हुए हैं। वर्तमानकालमें इतने ग्रंथोंका पता चला है–जिनमें नीतिका मुख्यतः वर्णन है। परन्तु इनमेंसे किसीमें भी सम्पूर्ण कानूनका वर्णन नहीं मिलता है। तो भी मेरा विचार है कि जो कुछ अङ्ग उपासकाध्ययनका लोप होनेसे बच रहा है वह सब कानूनकी कुछ आवश्यकीय बातोंके लिए यथेष्ट हो सकता है। चाहे उसका भाव समझनेमें प्रथम कुछ कठिनाइयोंका सामना करना पड़े। गत समयमें निरन्तर दुर्घटनाओं एवं बाह्य दुराचारोंके कारण जैन मतका प्रकाश रसातल अथवा अन्धकूपमें छिप गया।

जब अंगरेज आये तो जैनियोंने अपने शास्त्रोंको छिपाया व सरकारी न्यायालयोंमें पेश करनेका विरोध किया। एक सीमा तक उनका यह कृत्य उचित था क्योंकि न्यायालयोंमें किसी धर्मके भी शास्त्रोंका कोई मुख्य सम्मान नहीं होता। कभी-कभी न्यायाधीश और प्रायः अन्य कर्मचारी शास्त्रोंके पृष्ठोंके पलटनेमें मुंहका थूक लगाते हैं जिससे प्रत्येक धार्मिक हृदयको दुःख होता है। परन्तु इस दुःखका उपाय यह नहीं है कि शास्त्र पेश न किये जावें। क्योंकि प्रत्येक कार्य समयके परिवर्तनोंका विचार करते हुए अर्थात् जैन सिद्धांतकी भाषामें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे होना चाहिए।

जैनियोंके शास्त्रोंको न्यायालयोंमें प्रविष्ट न होने देनेका परिणाम यह हुआ कि अब न्यायालयोंने यह निर्णय कर लिया है कि जैनियोंका कोई नीतिशास्त्र ही

---

१. इस अंगके विषयोंकी सूची और वर्णनके निमित्त रा० ब० बा० जुगमन्दिरलाल जैनीकी किताब आउट लाइन्ज़ ऑफ जैनिज्म देखनी चाहिए।

नहीं है (शिवसिंह राय बनाम दाखो १ इलाहाबाद ६८८ मुख्यत: ७०० पृष्ठ और हरनामप्रसाद ब० मण्डलदास २७ कलकत्ता ३७९ पृष्ठ)।

यद्यपि सन् १८७३ ई० में कुछ जैन नीति-शास्त्रोंके नाम न्यायालयोंमें प्रकट हो गये थे (भगवानदास तेजमल ब० राजमल १०, बम्बई हाईकोर्ट रिपोर्ट २४९, २५५-२५६)। और इससे भी पूर्व सन् १८३३ ई० में जैन नीतिशास्त्रोंका उल्लेख आया है (गोविन्दनाथ राय ब० गुलाबचंद ५ स्लेक्ट रिपोर्ट सदर दीवानी अदालत ककक्त्ता पृष्ठ २७६)। परन्तु न्यायालयोंका इसमें कुछ अपराध नहीं हो सकता है। क्योंकि न्यायालयोंने तो प्रत्येक अवसर पर इस बातकी कोशिश की कि जैनियोंकी नीति या कमसे कम उनके रिवाजोंकी जांच की जाय ताकि उन्हींके अनुसार उनके झगड़ोंका निर्णय किया जावे।

सर ई० मौनटेगो स्मिथ महोदयने शिवसिंह राय० ब० दाखो (१ इलाहाबाद ६८८ P. C.) के मुकदमेमें प्रिवीकौंसिलका निर्णय सुनाते समय व्याख्या की थी कि "यह घटना वास्तवमें बड़ी आश्चर्यजनक होती यदि कोई न्यायालय जैनियोंके जैसी बड़ी और धनिक समाजोंको उनके यथेष्ट साक्षी द्वारा प्रमाणित कानून और रिवाजोंकी पाबंदीसे रोकती, अगर यह पर्याप्त साक्षियोंसे प्रमाणित हो सकें।" प्रेमचंद पेपारा ब० हुलासचंद पेपारा १२ बीकली रिपोर्ट पृ० ४९४ में भी जैन नीतिशास्त्रोंका उल्लेख आया है।

अनुमानत: न्यायालयोंके पुराने नियमानुसार पण्डितोंसे शास्त्रोंके अनुकूल व्यवस्था ली गई होगी। यह मुकदमा सन् १८६९ ई० में फैसल हुआ था।

हिन्दुओंको भी ऐसा ही भय अपने शास्त्रोंकी मानहानिका था जैसा जैनियोंको, परन्तु उन्होंने बुद्धिमानीसे काम लिया। जैनियोंकी भाँति उन्होंने अपने धर्म—शास्त्रोंको नहीं छिपाया और उनके छपने व छपानेमें बाधक नहीं हुए। जैनियोंकी महासभाने बारम्बार यही प्रस्ताव पास किया कि छापा धर्म विरुद्ध है। इसका परिणाम यह हुआ कि अब तक लोगोंको यह प्रकट नहीं हुआ कि जैनधर्म वास्तवमें क्या है और कबसे प्रारम्भ हुआ और इसकी शिक्षा क्या है; कौन-कौनसे नीति और नियम जैनियोंको मान्य हैं तथा उनकी कानूनी पुस्तकें वास्तवमें क्या क्या हैं।

रा० ब० बा० जुगमन्दरलाल जैनी बैरिस्टर—एट-ला भूतपूर्व चीफ जज हाई-कोर्ट इन्दौर प्रथम बार इस कठिनाईका अनुभव करके जैन-लॉ नामक एक पुस्तक सन् १९०८ ई० में तैयार की जिसको स्वर्गीय कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन, आरा निवासीने १९१६ ई० में प्रकाशित कराया। परन्तु यह भी सुयोग्य संपादकको अधिक अवकाश न मिलने एवं जैन समाजके प्रमादके कारण अपूर्ण ही रही और इसके

विद्वान् रचयिताने विद्यमान नीति-पुस्तकोंमेंसे कुछके संग्रह करने और उनमेंसे एकके अनुवाद करनेपर ही संतोष किया। किन्तु इसके पश्चात् उन्होंने जैन-मित्र-मण्डल देहलीकी प्रार्थनापर वर्धमान नीति, इंद्रनन्दी जिन संहिताका भी अनुवाद कर दिया है।

इन अनुवादोंका उपयोग मैंने इस ग्रन्थमें अपनी इच्छानुसार किया है जिसके लिए अनुवादक महोदयने मुझे मैत्री-भावसे सहर्ष आज्ञा प्रदान की। मगर तो भी जैनियोंने कोई विशेष ध्यान इस विषयकी ओर नहीं दिया। हाँ, सन् १९२१ ई० में जब डाक्टर गौड़का हिन्दू-कोड़ प्रकाशित हुआ और उसमें उन्होंने जैनियोंको धर्म-विमुख हिन्दू (Hindu dissenters) लिखा उस समय जैनियोंने उसका कुछ विरोध किया और जैन-लॉ कमेटीके नामसे अंग्रेजी-भाषा-विज्ञ वकीलों, शास्त्रज्ञ पंडितों और अनुभवी विद्वानोंकी एक समिति स्थापित हुई जिसने प्रारम्भमें अच्छा काम किया परन्तु अन्ततः अनेक कारणों, जैसे दूर देशांतरोंसे सदस्योंकी एकत्रता कष्टसाध्य होना इत्यादिके उपस्थित होनेसे यह कमेटी भी अपने उद्देश्यको पूरा न कर सकी।

जब यह दशा जैन समाजकी वर्तमान समयमें है तो इसमें क्या आश्चर्य है कि १८६७ ई० में कलकत्ता हाईकोर्टने जैनियोंपर हिन्दू-लॉको लागू कर दिया (महावीरप्रसाद बनाम मुसम्मात कुन्दन कुँवर ८ वीक्ली रिपोर्टर पृ० ११६)। छोटेलाल ब० छुन्नूलाल (४ कलकत्ता पृ० ७४४); बचेबी ब० मक्खनलाल (३ इलाहाबाद पृ० ५५); पैरिया अम्मानी ब० कृष्णा स्वामी (१६ मद्रास पृ० १८२) व मण्डितकुमार ब० फूलचन्द (५ कलकत्ता बी० नोट्स पृ० १५४) ये सब मुकदमे हिन्दू-लॉ के अनुसार हुए और गलत निर्णय हुए क्योंकि इनमें जैन रिवाज (नीति) प्रमाणित नहीं पाया गया और जो मुकदमे सही भी फैसल हुए[1] वह भी वास्तवमें

---

१. उदाहरणार्थ देखो—

शिवसिंहराय ब० दाखो १ इला० ६८८ प्री० कौ०; अम्माबाई ब० गोविन्द २३ बम्बई २५७; लक्ष्मीचन्द बनाम गट्टीबाई ८ इला० ३१९; मानचन्द गोलेचा ब० जगत सेठानी प्राणकुमारी बीबी १७ कलकत्ता ५१८; सोहना शाह ब० दीपाशाह पंजाब रिकार्ड १९०२ नं० १५; शम्भूनाथ ब० ज्ञानचन्द १६ इला० ३७९ (जिसका एक देश सही फैसला हुआ); हरनामप्रसाद ब० मण्डिलदास २७ कल० ३७९; मनोहरलाल ब० बनारसीदास २९ इला० ४९५; अशरफी कुँअर ब० रूपचन्द ३० इला० १९७; रूपचन्द ब० जम्बूप्रसाद २२ इला० २४७ प्री० कौं०; रूषभ ब० चुन्नीलाल अम्बूसेठ १६ बम्बई ३४७; मु० सानो ब० मु० इन्द्रानी वहू ७८ इंडियन केसेज (नागपुर) ४६१; मौजीलाल ब० गोरी बहू सेकेण्ड अपील न० ४१६ (१८९७ नागपुर जिसका हवाला इंडियन केसेज ७८ के पृ० ४६१ में है)।

गलत ही हुए। क्योंकि उनका निर्णय मुख्य जैन रिवाजोंकी आधीनताके साथ (यदि ऐसे कोई रिवाज हों) मिताक्षरा कानूनसे हुआ न कि जैन-लॉके अनुसार जैसा कि होना चाहिए था।

इन मुकदमोंके पश्चात् जो और मुकदमे हुए उनमें भी प्रायः यही दशा रही। परन्तु तो भी सरकारका उद्देश्य और न्यायालयोंका कर्तव्य यही है कि वह जैन-लॉ या जैन रिवाजोंके अनुसार हो जैनियोंके मुकदमोंका निर्णय करें। यह कोड इसी अभिलाषा से तैयार किया गया है कि जैन-लॉ फिर स्वतन्त्रतापूर्वक एक बार प्रकाशमें आकर कार्यमें परिणत हो सके तथा जैनी अपने ही कानूनके पाबन्द रह-कर अपने धर्मका समुचित पालन कर सकें।

यह प्रश्न कि हिन्दू-लॉ की पाबन्दीमें जैनियोंका क्या बिगड़ता है उत्पन्न नहीं होता है न होना ही चाहिए।[1]

इस प्रकार तो हम यह भी पूछ सकते हैं कि यदि मुसलमानों और ईसाइयोंके मुकदमे भी हिन्दू नीतिके अनुसार फैसले कर दिये जावें तो क्या हानि है। इस प्रकार किसी अन्य मतकी नीतिकी पाबन्दीसे शायद कोई व्यक्ति सांसारिक विषयोंमें कोई विशेष हानि न दिखा सके। परन्तु स्वतन्त्रताके इच्छुकोंको स्वयं ही विदित है कि प्रत्येक रीति क्रम (system) एक ऐसे दृष्टिकोण पर निर्भर होता है कि जिसमें किसी दूसरी रीति क्रम (system) के प्रवेश कर देनेसे सामाजिक विचार

१. इस बातके दिखानेके लिए कि यदि जैनी अपने कानूनकी पाबन्दी नहीं करने पायेंगे तो किस प्रकारकी हानियाँ उपस्थित होंगी एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। जैनियोंमें पुत्रका अधिकार माताके आधीन रक्खा गया है जिसकी उपस्थितिमें वह विरसा (दाय) नहीं पाता है। स्त्री अपने पतिकी सम्पूर्ण सम्पत्तिकी पूर्ण स्वामिनी होती है। वह स्वतन्त्र होती है कि उसे चाहे जिसको दे डाले। उसको कोई रोक नहीं सकता, सिवाय इसके कि उसके छोटे बच्चोंके पालन-पोषणका ध्यान अवश्य रखना होता है। इस उत्तम नियमका यह प्रभाव है कि पुत्रको सदाचार, शील और आज्ञापालनमें आदर्श बनना पड़ता है ताकि माताका उस पर प्रेम बना रहे। 'पुत्रको स्वतन्त्र स्वामित्व माताकी उपस्थितिमें देनेका यह परिणाम होता है कि माताकी आज्ञा निष्फल हो जाती है। जैनियोंमें दोषियोंकी संख्या कम होना जैसा कि अन्य जातियोंकी अपेक्षा वर्तमानमें है जैन-कानून बनानेवालों की बुद्धिमत्ताका ज्वलन्त उदा-हरण है। यदि जैनियोंपर वह कानून लागू किया जाता है जिसका प्रभाव माताकी जबानको बंद कर देना या उसकी आज्ञाको निष्फल बना देना है तो ऐसी दशामें उनसे इतने उत्तम सदाचारकी आशा नहीं की जा सकती।

और आचारकी स्वतन्त्रताका नाश हो जाता है और व्यर्थ हानि अथवा गड़बड़ीके अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होता।

इतना कह देना भी यथेष्ट न होगा कि रिवाजोंके रूपमें ही जैन-नीतिके उद्देश्योंका पूर्णतया पालन हो सकता है और इसलिए अब तक जैसा होता रहा है वैसे ही होते रहने दो। क्योंकि प्रत्येक कानूनका जाननेवाला जानता है कि किसी विशेष रिवाजको प्रमाणित करना कितना कठिन कार्य है। सैकड़ों साक्षी और उदाहरणों द्वारा इसके प्रमाणित करनेकी आवश्यकता होती है जो साधारण मुकदमे वालोंकी शक्ति एवं छोटे मुकदमोंकी हैसियतसे बाहर है। और फिर भी अन्यायका पूरा भय रहता है जैसा कि एकसे अधिक अवसरोंपर हो चुका है।

समाज भी भयभीत दशामें रहता है कि नहीं मालूम मौखिक साक्षियों द्वारा प्रमाणित होनेवाले रिवाज-विशेष पर न्यायालयमें क्या निर्णय हो जाय। यदि कहीं फैसला उलटा पलटा हो गया तो अशांति और भी बढ़ जाती है, क्योंकि यह (निर्णय) वास्तविक जाति रिवाजके प्रतिकूल हुआ। किसी साधारण मुकदमेमें अन्याय हो जाना यद्यपि दोषयुक्त है किन्तु उससे अधिक हानिकी सम्भावना नहीं है क्योंकि उसका प्रभाव केवल विपक्षियों पर ही पड़ता है। परन्तु साधारण रिवाजोंके सम्बन्धमें ऐसा होनेसे उसका प्रभाव सर्व समाज पर पड़ता है। इसी प्रकारकी और भी हानियाँ हैं जो उसी समय दूर हो सकेंगी जब जैन-लॉ स्वतन्त्रताको प्राप्त हो जायगा।

कुछ व्यक्तियोंका विचार है कि जैन-धर्म हिन्दू-धर्मकी शाखा है। और जैन-नीति भी वही है जो हिन्दुओंकी नीति है। यह लोग जैनियोंको धर्म-विमुख हिन्दू (Hindu dissenters) मानते हैं। परन्तु वास्तविकता सर्वथा इसके विपरीत है।

यह सत्य है कि हिन्दू-लॉ और जैन-लॉ में अधिक समानता है तो भी यदि आर्योंका स्वतन्त्र कानून कोई हो सकता है तो जैन-लॉ ही हो सकता है। कारण कि हिन्दू-धर्म जैन-धर्मका स्रोत किसी प्रकारसे नहीं हो सकता वरन् इसके विरुद्ध जैन-धर्म हिन्दू-धर्मका सम्भवतः मूल हो सकता है। क्योंकि हिन्दू-धर्म और जैन-धर्ममें ठीक वही सम्बन्ध पाया जाता है जो विज्ञान और काव्य-रचनामें हुआ करता है। एक वैज्ञानिक है दूसरा अलङ्कारयुक्त। इसमेंसे पहिला कौन हो सकता है और पिछला कौन इसका उत्तर टामस कारलाइलके कथनानुसार यों दिया जा सकता है कि विज्ञान (science) का सद्भाव काव्य-रचना (allegory) से पूर्व होता है।

भावार्थ—पहिले विज्ञान होता है और फिर पीछे काव्य रचना।[१]

जैनी लोग धर्म-विमुख हिन्दू (Hindu dissenters) नहीं हो सकते हैं। जब एक धर्म दूसरे धर्मसे पृथक् होकर निकलता है तो उनके अधिकांश सिद्धान्त एक ही होते हैं। अन्तर केवल दो चार बातोंका होता है। अब यदि हिन्दू मतको अलंकारयुक्त न मानकर जैन मतसे उसकी तुलना करें तो बहुतसे अन्तर मिलते हैं। समानता केवल थोड़ीसी ही बातोंमें है। सिवाय उन बातोंके जो लौकिक व्यवहार से सम्बन्ध रखती हैं। यहाँ तक कि संस्कार भी जो एकसे मालूम पड़ते हैं वास्तवमें उद्देश्यकी अपेक्षा भिन्न हैं ध्यानपूर्वक देखा जाय। जैनी जगतको अनादि मानते हैं; हिन्दू ईश्वर-कृत। जैन मतमें पूजा किसी अनादि निधन स्वयंसिद्ध परमात्माकी नहीं होती है वरन् उन महान् पुरुषोंकी होती है जिन्होंने अपनी उद्देश्य-सिद्धि प्राप्त कर ली है और स्वयं परमात्मा बन गये हैं।

हिन्दू मतमें जगत्-स्वामी जगत्-जनक एक ईश्वरकी पूजा होती है। पूजाका भाव भी हिन्दू मतमें वही नहीं है जो जैन मतमें है। जैन मतकी पूजा आदर्श पूजा (Idealatory) है। उसमें देवताओंको भोग लगाना आदि क्रियाएँ नहीं होती हैं, न देवतासे कोई प्रार्थना की जाती है कि हमको अमुक वस्तु प्रदान करो। हिन्दू मतमें देवताके प्रसन्न करनेसे अर्थ सिद्ध मानी गई है।

शास्त्रोंके सम्बन्धमें तो जैन-धर्म और हिन्दू-धर्ममें आकाश पातालका अन्तर है। हिन्दुओंका एक भी शास्त्र जैनियोंको मान्य नहीं है और न हिन्दू ही जैनियोंके किसी शास्त्रको मानते हैं। लेख भी शास्त्रोंके विभिन्न हैं। चारों वेद और अठारह पुराणोंका जो हिन्दू मतमें प्रचलित हैं कोई अंश भी जैन मतके शास्त्रोंमें सम्मिलित नहीं है, न जैन मतके पूज्य शास्त्रोंका कोई अंग स्पष्ट अथवा प्रकट रीतिसे हिन्दू शास्त्रोंमें पाया जाता है। जिन क्रियाओंमें हिन्दू और जैनियोंकी समानता पाई जाती है वह केवल सामाजिक क्रिया है। उनका भाव भी जहाँ कहीं वह धार्मिक सम्बन्ध रखता है एक दूसरेके विपरीत है। साधारण सभ्यता सम्बन्धी समानता विविध जातियोंमें जो एक-साथ रहती सहती चली आई है, हुआ ही करती है।

मुख्यतः ऐसी दशामें जब कि उनमें विवाहादिक सम्बन्ध भी होते रहे जैसे हिन्दू और जैनियोंमें होते रहे हैं। कुछ सामाजिक व्यवहार जैनियों, हिन्दुओं और

---

१. देखो रचयिताकी बनाई हुई निम्न पुस्तकें—

१. की ऑफ नालेज (Key of Knowledge), २. प्रैक्टिकल पाथ (Practical Path), ३. कोनफ़्लोएन्स ऑफ ओपोज़िट्स (Confluence of Opposites ch. IX) और हिन्दू उदासीन साधू शंकराचार्यकी रचित आत्मरामायण तथा हिन्दू पण्डित के० नारायण आइरकी रचित परमेनन्ट हिस्ट्री ऑफ भारतवर्ष (Permanent History of Bharatvarsha)।

मुसलमान इत्यादिमें एकसे पाये जाते हैं। परन्तु इनका कोई मुख्य प्रभाव धर्म-सम्बन्धी विषयों पर नहीं होता है। इसके अतिरिक्त राजाओं और बड़े पुरुषोंकी देखादेखी भी बहुतसी बातें एक जातिकी दूसरी जातिमें ले ली जाती हैं। आपत्ति-कालमें धर्म और प्राणरक्षाके निमित्त भी धार्मिक क्रियाओंमें बहुत कुछ परिवर्तन करना पड़ता है।

गत समयमें भारतवर्षमें हिन्दुओंने जैनियों पर बहुतसे अत्याचार किये। जैन श्रावकों और साधुओंको घोर दुःख पहुँचाये और उनका प्राणघात तक किया। ऐसी दशा में जैनियोंने अपनी रक्षार्थ ब्राह्मणीय लोभकी शरण ली और सामाजिक विषयोंमें ब्राह्मणोंको पूजा पाठके निमित्त बुलाना आरम्भ किया।[1]

१. स्वयं भद्रबाहु संहिताके एक दूसरे अप्रकाशित भागका निम्न श्लोक इस विषयको स्पष्टतया दर्शाता है—

जँ किंचिव उप्पादम् अण्णं विग्धं च तत्थणासेई।
दक्खिण देजा सुवण्णं गावी भूमिउ विप्प देवाणं ॥४॥११२॥

भावार्थ—जो कोई भी आपत्ति या कष्ट आ पड़े तो उस समय ब्राह्मण देवताओंको सुवर्ण, गऊ और पृथ्वी दान देना चाहिए। इस प्रकार उसकी शांति हो जाती है।

नोट—जैनियों पर हिन्दुओंके अत्याचारका वर्णन बहुत स्थानों पर आया है। निम्नांकित लेख एक हिन्दू मन्दिरके स्तम्भ पर है जो हिन्दुओंकी जैनियोंके प्रति गत समयकी स्पर्धा और अन्यायका ज्वलन्त उदाहरण है (देखो Studies in South Indian Jainism part II pages 34–35) :—

"सरसैलमके स्तम्भ-लेख सम्बन्धी विवरणसे स्पष्टतया प्रकट है कि हिन्दुओंने जैनियों पर किस किस प्रकार अन्याय किये जिससे उस देशमें अन्ततः जैनधर्मका अन्त हो गया। यह स्तम्भ–लेख वास्तवमें शिवोपासक हिन्दुओंका ही है। संस्कृत भाषामें मलिख अजनके मन्दिरके मण्डपके दायें और बायें तरफ स्तम्भों पर यह एक लम्बा लेख है जिसमें उल्लिखित है कि सं० १४३३ प्रजोत्पत्ति माघ वदी १४ सोमवारके दिन सन्तके पुत्र राजा लिङ्गने, जो भक्त्योन्मत्त शिवोपासक था, सरसैलमके मन्दिरमें बहुत सी भेंट चढ़ाई। इसमें इस राजाका यह कार्य भी सराहा गया है कि उसने कतिपय श्वेताम्बर जैनियोंके सिर काटे। यह लेख दो प्रकारसे विचारणीय है। प्रथम यह कि इससे प्रकट होता है कि अंध्र देशमें ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दिके प्रथम चतुर्थ भागमें शिवमतानुयायी जैनियोंके साथ शत्रुता रखते थे। यह

यह रिवाज अभी तक प्रचलित है और अब भी विवाहादिक संस्कारोंमें ब्राह्मणोंसे काम लेते हैं। परन्तु धर्म सम्बन्धी विषय नितान्त पृथक् हैं। उनसे कोई प्रयोजन नहीं है। अनभिज्ञ तथा अर्धविज्ञ पुरुषोंने आरम्भमें जैन-धर्मको बौद्ध-धर्मकी शाखा समझ लिया था किन्तु अब इस भ्रममें कदाचित् ही कोई पड़ता हो। अब इसको हिन्दू मतकी शाखा सिद्ध करनेको कुछ बुद्धिमान् उतारू हुए हैं, सो यह भ्रम भी जब उच्च कोटिके बुद्धिमान इस ओर ध्यान देंगे शीघ्र दूर हो जायगा।

नीतिके सम्बन्धमें भी जैनियों और हिन्दुओंमें बड़े बड़े अन्तर हैं। जैनियोंमें दत्तक पारलौकिक सुख प्राप्त करनेके उद्देश्यसे नहीं लिया जाता।[1] पुत्रके होने न होनेसे कोई मनुष्य पुण्य पापका भागी नहीं होता।[2] बहुतसे तीर्थंकर पुत्रवान् न होकर भी परम पूज्य पदको प्राप्त हुए। इसके विपरीत बहुतसे मनुष्य पुत्रवान् होते हुए भी नरकगामी होते हैं। न तो जैनधर्मका यह उपदेश है न हो सकता है कि कोई अपनी क्रियाओं या दानादिसे किसी मृतक जीवको लाभ पहुँचा सकता है।

पिण्डदानका शब्द जहाँ कहीं जैन नीति शास्त्रोंमें मिलता है उसका वही अर्थ नहीं है जो हिन्दुओंके शास्त्रोंमें पाया जाता है कि जैनियोंने यह शब्द अत्याचारके समयमें ब्राह्मण जातिके प्रसन्नतार्थ अपनी कुछ कानूनी पुस्तकोंमें बढ़ा लिया।

जैन-लॉ में पिण्डदान का अर्थ शब्दार्थमें लगाना होगा। जैसे सपिण्डका अर्थ शारीरिक अथवा शरीर सम्बन्धी है उसी प्रकार पिण्डदानका अर्थ पिण्डका प्रदान करना, अथवा वीर्यदान करना, भावार्थ पुत्रोत्पत्ति करना है जिसके द्वारा पिण्ड अर्थात् शरीरकी उत्पत्ति होती है।

जैन-सिद्धांतके अनुसार पिण्डदानका इसके अतिरिक्त और कोई ठीक अर्थ नहीं हो सकता है। यह ध्यान देने योग्य है कि अर्हन्नीतिमें जो श्वेतांबर सम्प्रदाय-का एक मात्र नीति-सम्बन्धी ग्रन्थ है पिण्डदानका उल्लेख कहीं भी नहीं आया है।

स्त्रियोंके अधिकारोंके विषयमें भी जैन-लॉ और हिन्दू-लॉ में बहुत बड़ा अन्तर है। जैन-लॉ के अनुसार स्त्रियाँ दायभागकी पूर्णतया अधिकारिणी होती

शत्रुता सोलहवीं शताब्दिके प्रथम चतुर्थ भाग तक जानी दुश्मनी बन गई। द्वितीय यह कि दक्षिण भारतमें श्वेताम्बर सम्प्रदायको भी वहांके शिवोपासक लोग ऐसा सम्प्रदाय समझते थे जिसका अन्त कर देना शैवोंको अभीष्ट था।"

१. देखो शिवकुमार बाई ब० जीवराज २५ कल० वी० नोट्स २७३ मानकचन्द बनाम मुन्नालाल ९५ पन्जाब रेकाड १९०९-४ इंडियन केसेज़ ८४४; वर्धमाननीति २८।

२. भद्रबाहु सं० ८-९।

है। हिन्दू-लॉ में उनको केवल जीवन पर्यन्त (life estate) अधिकार मिलता है। सम्पत्तिका पूर्ण स्वामित्व हिन्दू-लॉ के अनुसार पुरुषों ही को मिलता है। पत्नी पूर्णतया अर्धाङ्गिनीके रूपमें जैन-लॉ में ही पाई जाती है। पुत्र भी उसके समक्ष कोई अधिकार नहीं रखता है। जैन-लॉ में लड़की केवल बाबा (पितामह) की सम्पत्तिमें अधिकारी है। पिताकी निजी स्थावर सम्पत्तिमें उसको केवल गुजारेका अधिकार प्राप्त है। और अपने जङ्गम द्रव्यका पिता पूर्ण अधिकारी है चाहे जिस प्रकार व्यय करे।

इसके अतिरिक्त हिन्दू-लॉ में अविभाजित दशाकी प्रशंसा की गई है। जैन-लॉ में उसका निषेध न करते हुए पृथक्ताका आग्रह है ताकि धर्मकी वृद्धि हो। जैन-लॉ में अविभाजित सम्पत्ति भी सामुदायिक द्रव्य (tenanecy in common) के रूपमें है न कि मिताक्षराके अनुसार अविभक्त सम्पत्ति (Joint estate) के तौर पर। यदि कोई पुत्र धर्मभ्रष्ट एवं दुष्ट वा ढीठ है और किसी तरहसे न माने तो जैन नीतिके अनुसार उसको घरसे निकाल देनेकी आज्ञा है परन्तु हिन्दू-लॉके अनुसार ऐसा नहीं हो सकता। इसी प्रकारके अन्य भेदात्मक विषय हैं जो हिन्दू-लॉ और जैन-लॉके अवलोकनसे स्वयं ज्ञात हो जाते हैं। इसलिए यह कहना जैनधर्म हिन्दू धर्मकी शाखा है और जैन लॉ, हिन्दू-लॉ समान हैं, नितान्त मिथ्या है।

अन्तिम सङ्कलित भागमें मैंने वह निबन्ध जोड़ दिया है जो डॉ० गौड़के हिन्दू कोड़के सम्बन्धमें लिखा था। परन्तु उसमेंसे वह भाग छोड़ दिया है जिसका वर्तमान विषयसे कोई सम्बन्ध नहीं है। तथा उसमें कुछ ऐसे विशेष नोट बढ़ा दिये गये हैं जिनसे इस बातका ऐतिहासिक ढंगसे पता लगता है कि जैनियोंपर हिन्दू लॉको लागू करनेका नियम कैसे स्थापित किया गया।

अन्ततः मैं उन विनयोन्मत्त धर्म-प्रेमियोंसे जो अभी तक शास्त्रोंके छपानेका विरोध करते चले जाते हैं अनुरोध करूँगा कि अब वह समय नहीं रहा है कि एकदिन भी और हम अपने शास्त्रोंको छिपाये रहें। यदि उनको शास्त्र सभाके शास्त्रोंको मन्दिरसे ले जाकर न्यायालयोंमें प्रविष्ट करना रुचिकर नहीं है। (जिसको मैं भी अनुचित समझता हूँ) तो उनको शास्त्रोंको छपवाना चाहिए ताकि छापेकी प्रतियोंका अन्य प्रत्येक स्थानपर प्रयोग किया जा सके, और जैन-धर्म, जैन-इतिहास और जैन-लॉके संबंधमें किंवदंतियां संसारमें फैल रही हैं दूर हो सकें।

लन्दन
२४-६-२६

चम्पतराय जैन
बैरिस्टर-एट-ला, विद्यावारिधि

हिन्दी अनुवादकी प्रस्तावना

जैन-लॉकी असली प्रस्तावना अंग्रेजी पुस्तकमें लिखी जा चुकी है, जिसका अनुवाद इस पुस्तकमें भी सम्मिलित है। हिन्दी अनुवादके लिए साधारणतः किसी पृथक् भूमिकाकी आवश्यकता न थी किंतु कतिपय आवश्यक बातें हैं जिनका उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है। और इस कारण उनको इस भूमिकामें लिखा जाता है—

(१) जैन-लॉ इस समय न्यायालयोंमें अमान्य है, परन्तु वर्तमान न्यायालयोंकी न्याय-नीति यही रही है कि यदि जैन-लॉ पर्याप्त विश्वस्त रूपसे प्रमाणित हो सके तो वह कार्यरूपमें परिणत होना चाहिए। यह विषय अंग्रेजी भूमिका व पुस्तकके तृतीय भागमें स्पष्ट कर दिया गया है।

(२) पिछले पचास वर्षकी असन्तुष्टताके समयका चित्र भी तृतीय भागमें मिलेगा। जैन-लॉके उपस्थित न होनेके कारण प्रायः न्यायालयोंके न्यायमें भूल हुई है। कहीं-कहीं रिवाजके रूपमें जैन-लॉके नियमोंको भी माना गया है; अन्यथा हिन्दू-लॉ ही का अनुकरण कराया गया है। इस असन्तुष्टताके समयमें यह असंभव नहीं है कि कहीं कहीं विभिन्न प्रकारके व्यवहार प्रचलित हो गये हों।

(३) अब जैनियों का कर्त्तव्य है कि तन, मन, धनसे चेष्टा करके अपने ही लॉका अनुकरण करें और सरकार व न्यायालयोंमें उसे प्रचलित करावें। इसमें बड़े भारी प्रयासकी आवश्यकता पड़ेगी। अनायास ही यह प्रथा नहीं टूट सकेगी कि जैनी हिन्दू डिससेन्टर हैं और हिन्दू-लॉके पाबन्द हैं जबतक वह कोई विशेष रिवाज साबित न कर दें। इसके सिवा कुछ ऐसे मनुष्य भी होंगे जो जैन-लॉके प्रचारमें अपनी हानि समझेंगे। और कुछ लोग तो योंही 'नवीन' आन्दोलनके विरुद्ध रहा करते हैं। ये गुलामीमें आनन्द माननेके लिये प्रस्तुत होंगे। किन्तु इन दोनों प्रकारके महाशयोंकी संख्या कुछ अधिक नहीं होनी चाहिए। यद्यपि ऐसे सज्जन बहुतसे निकलेंगे जिनके लिए यह विषय अधिक मनोरंजक न हो। यदि सर्व जैन जाति अर्थात् दिगम्बरी, श्वेतांबरी और स्थानकवासी तीनों सम्प्रदाय मिलकर इस बातकी चेष्टा करेंगे कि जैन-लॉ प्रचलित हो जाय तो कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता कि क्यों ऐसा न हो, यद्यपि प्रत्यक्षतया यह विषय आसानीसे सिद्ध न होगा।

(४) यदि हम निम्नलिखित उपायोंका अवलम्बन करें तो अनुमानतः शीघ्र सफल हो सकते हैं—

(क) प्रत्येक सम्प्रदायको अपनी अपनी समाजोंमें प्रथमतः इस जैन-लॉके पक्षमें प्रस्ताव पास कराने चाहिए।

(ख) फिर एक स्थानपर प्रत्येक समाजके नेताओंकी एक सभा करके उन प्रस्तावों-पर स्वीकृति प्रदान करनी चाहिए।

(ग) जो सज्जन किसी कारणसे जैन-लॉ के नियमोंको अपनी इच्छाओंके विरुद्ध पावें वे अपनी इच्छाओंकी पूर्ति वसीयतके द्वारा कर सकते हैं। इस भाँति धर्म और जातिकी स्वतन्त्रता भी बनी रहेगी और उनकी मानसिक इच्छाकी पूर्ति भी हो जायगी।

(घ) मुकदमेवाजी की सूरतमें प्रत्येक सच्चे जैनीका जो संसार भ्रमणसे भयभीत और मोक्षका जिज्ञासु है यही कर्त्तव्य है कि वह सांसारिक धन सम्पत्तिके लिए अपनी आत्माको मलिन न करे और दुर्गतिसे भयभीत रहे। यदि किसी स्थान पर कोई रीति यथार्थमें जैन-लॉ के लिखित नियमके विरुद्ध है तो स्पष्ट शब्दोंमें कहना चाहिए कि जैन-लॉ तो यही है जो पुस्तकमें लिखा हुआ है किन्तु रिवाज इसके विरुद्ध है। और उसको प्रमाणित करना चाहिए।

इस पर भी यदि कोई सज्जन न मानें तो उनकी इच्छा। किन्तु ऐसी अवस्था में किसी जैनीको उनकी सहायता नहीं करनी चाहिए। न उनको असत्यके पक्षमें कोई साक्षी ही मिलना चाहिए वरन् जो जैनी साक्षीमें उपस्थित हो उसको साफ-साफ और सत्य-सत्य हाल प्रकट कर देना चाहिए। और सत्य वातको नहीं छुपाना चाहिए। जब उभय पक्षके गवाह स्पष्टतया सत्य वातका पक्ष लेंगे तो फिर किसी पक्षकी हठधर्मी नहीं चलेगी। विचार होता है कि यदि इस प्रकार कार्यवाही की जायगी तो जैन-लॉ को स्वतन्त्रताकी फिर एक वार स्थिति हो जायगी।

(५) इस जैन-लॉ में वर्तमान जैन शास्त्रोंका संग्रह, विना इस विचारके कि ये दिगम्बरी वा श्वेताम्बरी सम्प्रदायके हैं, किया गया है। यह हर्षकी वात है कि उनमें परस्पर मतभेद नहीं है। इसलिए यह व्यवस्था (कानून) सव ही सम्प्रदाय-वालोंको मान्य हो सकती है। और किसीको इसमें विरोध नहीं होना चाहिए।

(६) जैन-लॉ और हिन्दू-लॉ (मिताक्षरा) में विशेष भिन्नता यह है कि हिन्दू-लॉ में सम्मिलित-कुलमें ज्वाइंटस्टेट (Joint estate) और सरवाईवरशिप (survivorship) का नियम है। जैन-लॉ में ज्वाइन्ट टेनेन्सी (Joint tenancy)

है। इनमें भेद यह है कि ज्वाइन्ट इस्टेटमें यदि कोई सहभागी मर जाय तो उसके उत्तराधिकारी दायाद नहीं होते हैं, अवशिष्ट भागियोंकी ही जायदाद रहती है, और हिस्सोंका तखमीना बटवारेके समय तक नहीं हो सकता है। परन्तु ज्वाइन्ट टेनेन्सीमें (survivorship) सरवाईवरशिप सर्वथा नहीं होता।

एक सहभागीके मर जाने पर उसके दायाद उसके भागके अधिकारी हो जाते हैं। इसलिए हिन्दू-लॉ में खानदान मुश्तरिका मिताक्षराकी दशामें मृत भ्राताकी विधवाकी कोई हैसियत नहीं होती है और वह केवल भोजन वस्त्र पा सकती है।

जैन-लॉ में वह मृत पुरुषके भागकी अधिकारिणी होगी चाहे उसकी विभक्ति हो चुकी या नहीं हो चुकी हो। पुत्र भी जैन-लॉके अनुसार केवल पैतामहिक सम्पत्तिमें पिताका सहभागी होता है और अपना भाग विभक्त कराकर पृथक् कर सकता है। किन्तु पिताकी मृत्युके पश्चात् वह उसके भागको माताकी उपस्थितिमें नहीं पा सकता; माताकी मृत्युके पश्चात् उस भागको पायेगा।

अस्तु हिन्दू-लॉ में स्त्रीका कोई अधिकार नहीं है। पति मरा और वह भिखारिणी हो गई। पुत्र चाहे अच्छा निकले चाहे बुरा माताको हर समय उसके समक्ष कौड़ी कौड़ीके लिए हाथ पसारना और गिड़गिड़ाना पड़ता है। बहुतेरे नये नवाब भोग विलास और विषय सुखमें घरका धन नष्ट कर देते हैं। वेश्याएँ उनकी धन-सम्पत्ति द्वारा आनंद करती हैं और उसको जलैव व्यय करती हैं। माता और पत्नी घरमें दो पैसेकी भाजीको आकिंचन बैठी रहती हैं। यदि भाई भतीजोंके हाथ धन लगा तो वे काहेको मृतककी विधवाकी चिन्ता करेंगे और यदि करेंगे भी तो टुकड़ों पर बसर करायेंगे।

यदि सौभाग्यवश पति कहीं पृथक् दशामें मरा तो विधवाको संपत्ति मिली किन्तु वह भी हीन हयाती रूपमें। कुछ भी उसने धर्म कार्य वा आवश्यकताके निमित्त व्यय किया और मुकदमा छिड़ा। रोज इसी भाँतिके सहस्रों मुकदमे न्यायालयोंमें उपस्थित रहते हैं जिनसे कुटुम्ब व्यर्थ ही नष्ट होते हैं और परस्पर शत्रुता बंधती है। जैन-लॉ में इस प्रकारके मुकदमे ही नहीं हो सकते।

पुत्रकी उपस्थितिमें भी विधवाका मृत पतिकी सम्पत्तिको स्वामिनीकी हैसियतसे पाना वास्तवमें अत्यन्त लाभदायक है। इससे पुत्रको व्यापार करनेका साहस होता है और वह आलस्य और जड़तासे बचता है। इसके सिवा उसको सदाचारी और आज्ञाकारी बनना पड़ता है। जितना धन विषय सुख और हरामखोरीमें नये नवाब व्यय कर देते हैं; यदि जैन-लॉ के अनुसार सम्पत्ति उनको न मिली होती तो वह सर्वथा नष्ट होनेसे बच जाती। यही कारण है कि जैनियोंमें सदाचारी व्यक्तियोंकी संख्या अन्य जातियोंकी अपेक्षा अधिकतर पाई जाती है। यह विचार,

कि पुत्रके न होते हुए विधवा धन अपनी पुत्री और उसके पश्चात् नाती अर्थात् पुत्रीके पुत्रको दे देगी, व्यर्थ है।

हिन्दू-लॉ में भी यदि पुत्र नहीं है और संपत्ति विभाज्य है तो विधवाके पश्चात् पुत्री और उसके पश्चात् नाती ही पाता है। पतिके कुटुम्बके लोग नहीं पाते हैं वरन् हिन्दू-लॉ के अनुसार तो नाती ऐसी विधवाकी संपत्तिको पावेगा ही क्योंकि विधवा पूर्ण स्वामिनी नहीं होती है वरन् केवल यावज्जीवन अधिकार रखती है। यदि वह इच्छा भी करे तो भी नातीको अनधिकृत करके पतिके भाई भतीजोंको नहीं दे सकती। इसके विरुद्ध जैन-लॉमें विधवा सम्पत्तिकी पूर्ण स्वामिनी होती है। पुत्री या नातीका कोई अधिकार नहीं होता। अतः यदि उसके पतिके भाई भतीजे उसको प्रसन्न रक्खें और उसका आदर और विनय करें तो वह उनको सबका सब धन दे सकती है।

इस कारण जैन-लॉ की विशिष्टता सूर्यवत् कान्तियुक्त है। इसमें विरोध करना मूर्खताका कारण है। यह भी ज्ञात रहे कि यदि कहीं ऐसा प्रकरण उपस्थित हो कि पुरुषको अपनी स्त्री पर विश्वास नहीं है तो उसका भी प्रबन्ध जैन-लॉ में मिलता है। ऐसे अवसरपर वसीयतके द्वारा कार्य करना चाहिए और स्वेच्छानुकूल अपने धनका प्रबन्ध कर देना चाहिए।

यदि कोई स्त्री दुराचारिणी है तो वह अधिकारिणी नहीं हो सकती है। यह स्पष्टतया जैन-लॉमें दिया हुआ है। मेरे विचारमें यदि ध्यानसे देखा जायगा तो सम्पत्तिके नष्ट होनेका भय नये नवाबोंसे इतना अधिक है कि जैन-लॉके रचयिताओंसे आक्रोशका अवसर नहीं रहता है।

अस्तु जो सज्जन अपने धर्मसे प्रेम रखते हैं और उसके स्वातन्त्र्यको नष्ट करना नहीं चाहते हैं और जिनको जैनी होनेका गौरव है उनके लिए यही आवश्यक है कि वे अपनी शक्ति भर चेष्टा इस बातकी करें कि विरुद्ध तथा हानिकारक अजैन कानूनोंकी दासतासे जैन-लॉको मुक्त करा दें। गुलामीमें आनन्द माननेवाले सज्जनोंसे भी मेरा अनुरोध है कि वे आँखें खोलकर जैन-लॉके लाभोंको समझें और व्यर्थकी बातें बनाने वा कलम चलानेसे निवृत्त होवें।

सन् १९२८]

सी० आर० जैन (चम्पतराय जैन)

विषय-सूची

प्रथम भाग

प्रथम परिच्छेद	दत्तक विधि और पुत्र विभाग	१
द्वितीय परिच्छेद	विवाह	८
तृतीय परिच्छेद	सम्पत्ति	१३
चतुर्थ परिच्छेद	दायभाग	२९
पंचम परिच्छेद	स्त्री धन	३६
छट्ठा परिच्छेद	भरण पोषण (गुजारा)	३९
सातवां परिच्छेद	संरक्षण	४२
आठवां परिच्छेद	रिवाज	४४

द्वितीय भाग

नवम परिच्छेद	त्रिवर्णिकाचार	४९
दसम परिच्छेद	श्री भद्रबाहु संहिता	५४
	श्री वर्द्धमान नीति	७३
	इन्द्रनन्दि जिन संहिता	८१
	अर्हन् नीति	९०

तृतीय भाग

जैन धर्म और डॉ० गौडका "हिन्दू कोड"	१११

प्रथम भाग

जैन-लॉ (जैन कानून)

प्रथम परिच्छेद

दत्तक विधि और पुत्र-विभाग

यों कहनेको लोग बहुत प्रकारके सम्बन्धियोंको पुत्र[1] शब्दसे सम्बोधित कर देते हैं। परन्तु कानूनके अनुसार पुत्र दो ही प्रकारके माने गये हैं (१) औरस (२) दूसरा दत्तक[2]।

औरस पुत्र विवाहिता स्त्रीसे उत्पन्न हुएको, और दत्तक जो गोद लिया हो उसे कहते हैं। सर्व पुत्रोंमें औरस और दत्तक ही मुख्य पुत्र गिने गये हैं। गौण पुत्र जब गोद लिये जावें तभी पुत्रोंकी भांति दायाद हो सकते हैं अन्यथा अपने वास्तविक सम्बन्धसे यदि वह अधिकारी हों तो दायाद होते हैं जैसे लघु भ्राता। औरस और दत्तक दोनों ही सपिण्ड गिने जाते हैं और इसलिए पिण्डदान करने वाले अर्थात् वंश चलानेवाले माने गये हैं। शेष पुत्र यदि अपने वास्तविक सम्बन्धसे सपिण्ड हैं तो सपिण्ड होंगे अन्यथा नहीं।

दत्तक पुत्रमें वह पुत्र भी सम्मिलित है जो क्रीत कहलाता है जिसका अर्थ यह है कि जो मोल लेकर गोद लिया गया हो। जिस शास्त्र[3] में क्रीतको अनधिकारी माना है वहाँ तात्पर्य केवल मोल लिए हुए बालकसे है जो गोद नहीं लिया गया हो। नीतिवाक्यामृत[4] में जो पुत्र गुप्त रीतिसे उत्पन्न हुआ हो अथवा जो फेंका हुआ हो वह भी अधिकारी तथा पिण्डदानके योग्य (कुलके

---

१. जैसे सहोदर (लघु भ्राता), पुत्रका पुत्र पाला हुआ बच्चा इत्यादि (देखो भद्रबाहु संहिता ८०–८३; वर्धमान नीति २–४; इन्द्र० जि० सं० ३२–३४; अर्ह० ६९–७३; त्रिवर्णाचार ९। ९; नीतिवाक्यामृत अध्याय ३१)। इनमें कहीं-कहीं विरोध भी पाया जाता है जो अनुमानतः कानूनको काव्य अर्थात् पद्यमें लिखनेके कारण हो गया है। क्योंकि काव्य-रचना कानून लिखनेके लिए उचित रीति नहीं है।

२. देखो उपर्युक्त प्रमाण नं० १।

३. नी० वा० अध्याय ३१।

४. ,, ,, ,,।

चलानेवाले) माने गये हैं, परन्तु वास्तवमें वे औरस पुत्र ही हैं। किसी कारणसे उनकी उत्पत्तिको छिपाया गया या जन्मके पश्चात् किसी-हेतु विशेषसे उनको पृथक् कर दिया गया था।

चारों वर्णोंमें एक पिताकी सन्तान यदि कोई भाई एकत्र (शामिल) रहते हों और उनमेंसे एकके ही पुत्र हो तो सभी भाई पुत्रवाले कहलावेंगे[५] इस प्रश्नका कि क्या वह अन्य भाई अपने लिए पुत्र गोद ले सकते हैं कोई उत्तर नहीं दिया गया है। परन्तु यह स्पष्ट है कि यदि वह एकत्र न रहते हों तो उनको पुत्र गोद लेनेमें कोई बाधा नहीं है। और इस कारणसे कि विभागकी मनाही नहीं है और वह चाहे जब अलग-अलग हो सकते हैं यह परिणाम निकलता है कि उनको गोद लेनेकी मनाही नहीं है। हिन्दू-लॉमें भी ऐसा ही नियम था (देखो मनुस्मृति ९–१८२) परन्तु अब इसका कुछ व्यवहार नहीं है (देखो गौड़का हिन्दू कोड द्वितीयावृत्ति पृ० ३२४)। यदि कोई व्यक्ति बिना गोद लिए मर जाय तो दूसरे भाईका पुत्र उस मृतकके पुत्रकी भांति अधिकारी होगा।

यदि किसी पुरुषके एकसे अधिक स्त्रियां हों और उनमेंसे किसी एकके पुत्र हो तो वह सब स्त्रियां पुत्रवती समझी जावेंगी[६]। उनको गोद लेनेका अधिकार नहीं होगा[७]। क्योंकि स्त्रियां अपने निमित्त गोद नहीं ले सकती हैं केवल अपने मृतक पतिके ही लिए ले सकती हैं। और केवल उसी दशामें जब कि वह मृतक पुत्रवान् न हो। वह एक स्त्रीका लड़का उन सबके धनका अधिकारी होगा[७]।

कौन गोद ले सकता है

औरस पुत्र यदि न हो[८] या मर गया हो[९] तो पुरुष अपने निमित्त गोद ले सकता है[१०] या औरस पुत्रको उसके दुराचारके कारण निकाल दिया हो और पुत्रत्व तोड़ दिया गया हो तो भी गोद लिया जा सकता है[११]।

यदि पुत्र अविवाहित मर गया हो तो उसके लिए गोद नहीं लिया जा सकता[९] अर्थात् उसके पुत्रके तौर पर नहीं लिया जा सकता। दत्तक पुत्रको

५. भद्र० संहि० ३८, अर्ह० १००।
६. भद्र० संहि० ३९; अर्ह० ९८।
७. ,, ,, ४०; ,, ९८।
८ ,, ,, ४१; ,, ८८—८९; वर्ध० ३१—३४।
९. ,, ,, ५९; व० नी० ३४।
१०. ,, ,, ४१; अर्ह० ८८—८९; व० नी० ३४।
११. अ० नी० ८८—८९।

यदि चारित्र्यभ्रष्टताके कारण निकाल दिया गया हो तो भी उसके बजाय दूसरा लड़का गोद लिया जा सकता है[१२]।

यदि पति मर गया हो तो विधवा भी गोद ले सकती है[१३]। विधवा को अनुमतिकी आवश्यकता नहीं है[१४]। यदि दो विधवा हों तो बड़ी विधवा को छोटी विधवाकी अनुमतिके बिना गोद लेनेका अधिकार प्राप्त है[१५]। सास बहू दोनों विधवा हों तो विधवा बहू गोद ले सकती है[१६]। बशर्ते कि दाय बहूने पाया हो जो उसी दशामें सम्भव है जब पुत्र पिताके पश्चात् मरा हो। अभिप्राय यह है कि जायदाद जिसने पाई है वही गोद ले सकता है। जिसने जायदाद विरसेमें नहीं पाई है वह गोद लेकर वारिस जायजको बरसेसे महरूम नहीं कर सकता। विधवा बहू सासकी आज्ञासे गोद लेवे[१७]। परन्तु यह भी उपदेश मात्र है न कि लाजमी शर्त्त मालूम पड़ती है सिवाय उस अवस्थाके जब कि सास जायदादकी अधिकारिणी है। ऐसी दशामें उसकी अनुमतिका यही अभिप्राय होगा कि उसने विरसेसे हाथ खींच लिया और दत्तक पुत्र वह जायदाद पावेगा। दत्तक पुत्रके अविवाहित मर जाने पर उसके लिए कोई पुत्र गोद नहीं ले सकता है[१८]। उसकी विधवा माता उसका धन जामाताको दे दे वा विरादरीके भोजन वा धर्म कार्यमें स्वेच्छानुसार लगावे[१९]। अभिप्राय यह है कि उसके विरसेकी अधिकारिणी उसकी विधवा माता ही होगी जो सम्पूर्ण अधिकारसे उसको पावेगी। वह विधवा अपने निमित्त दूसरा पुत्र भी गोद ले सकती

---

१२. वर्ध० २८; अर्ह० ८८—८९।

१३. ,, २८ व ३०; अर्ह० ५७ व १३२; भद्र० ७५।

१४. अशरफी कुँवर ब० स्वरूपचन्द, ३० इलाहाबाद १९७। शिवकुमार ब० ज्योराज २५ कल० वीकली नोट्स २३७ पी० सी०। ज्योराज बनाम शिवकुँवर इं० केसेज ६६ पृ० ६५। मानकचन्द बनाम मुन्नालाल, ९५ पञ्जाब रिकार्ड १९०९ ई० = ४ इं० के० ८४४। मनोहरलाल ब० बनारसीदास २९ इला० ४९५।

१५. अशरफीकुँवर ब० रूपचन्द ३० इलाहाबाद १९७, अमावा बनाम महदगोडा २२ बम्बई ४१६।

१६. भद्र० ७५; अर्ह० ११०।

१७. भद्र० ११६।

१८. भद्र० ५९; अर्ह० १२१–१२२ व १२४; वर्ध० ३०–३२।

१९. भद्र० ५८; अर्ह० १२३; वर्ध० ३३–३४।

है[२०] अर्थात् अपने पतिके लिए,[२१] उस मृतक पुत्रके लिए नहीं ले सकती है। एक मुकदमेमें, जिसका निर्णय हिन्दू-लॉके अनुसार हुआ, जैन विधवाका पहिले दत्तक पुत्रके मर जाने पर दूसरा पुत्र गोद लेनेका अधिकार ठीक माना गया[२२]। दत्तक लेनेकी सब वर्णोंको आज्ञा है[२३]। बम्बई प्रान्तके एक मुकदमेमें जिसका निर्णय रिवाजके अनुसार सन् १८९६ ई०में हुआ जिसमें पिताकी जीवन अवस्थामें पुत्रके मर जानेसे सर्व सम्पत्ति उस मृतक पुत्रकी विधवाओंने पाई, परन्तु बड़ी विधवाने पुत्र गोद ले लिया, इसे न्यायालयने उचित ठहराया यद्यपि छोटी विधवाकी बिना सम्मति यह कार्य हुआ था[२४]।

कौन दत्तक हो सकता है

जिसके कारण मनुष्य सपुत्र कहलाता है अर्थात् प्रथम पुत्र गोद नहीं देना चाहिए[२५] क्योंकि प्रथम पुत्रसे ही पुरुष पुत्रवाला (पिता) कहा जाता है[२६]। संसारमें पुत्रका होना बड़ा आनन्ददायक समझा गया है[२७]। पुण्यात्माओंके ही बहुतसे पुत्र होते हैं जो सब मिलकर अपने पिताकी सेवा करते हैं[२८]। हिन्दू-लॉकी भाँति अनुमानतः यह मनाही आवश्यकीय नहीं है और रिवाज भी इसके अनुसार नहीं है[२९]।

लड़का गोद लेनेवाली माताकी उम्रसे बड़ी उम्र का नहीं होना चाहिए[30]। कोई बन्धन कुंवारेपनकी जैन-लॉमें नहीं है[३१]।

देवर, पतिके भाईका पुत्र, पतिके कुटुम्बका बालक[३२], पुत्रीका पुत्र[33]

---

२०. वर्ध० ३४ और देखो प्रिया अम्मानी ब० कृष्णस्वामी १६ मद्रास १८२।

२१. अर्ह० १२४। २२. लक्ष्मीचन्द ब गट्टूबाई ८ इलाहाबाद ३१९।

२३. अर्ह० ८९। २४. अमावा ब० महद गोडा २२ बम्बई ४१६ और देखो कुंअर ब० रूपचन्द ३० इला० १९७।

२५. अर्ह० ३२। २६. भद्र० ७। २७. भद्र० १ अर्ह १२।

२८. अर्ह० १३।

२९. गौडका हिन्दू कोड द्वितीयावृत्ति ३८२।

३० भद्र० ११६ मगर देखो मानकचन्द ब० मुन्नालाल ९२ पञ्जाब रेकार्ड १९०९–८४ इंडियन केसेज ८४४।

३१. इन्द्र० १९।

३२. इन्द्र० १९ मगर देखो मानकचन्द ब० मुन्नालाल ९५ पञ्जाब रे० १९०९=४ इ० के० ८४४ (निसूवत देवरके गोद लेनेके)।

३३. होमाबाई ब० पंजियावबाई ५ वी० रि० १०२ प्री० कौं०; शिवसिंहराय बनाम दाखो १ इला० ६८८ प्री० कौं०।

गोद लिए जा सकते हैं। परन्तु उक्त क्रमकी अपेक्षासे गोद लेना श्रेष्ठतर होगा[३४]। इनके अभावमें पतिके गोत्रका कोई भी लड़का गोद लिया जा सकता है[३४]। बड़ी आयुका विवाहित पुरुष तथा सन्तानवाला भी गोद लिया जा सकता है[३५]। लड़की और बहिनके पुत्रको भी गोद लेनेकी आज्ञा है[३६]।

गोद लेनेकी विधि

वास्तवमें गोदमें देना आवश्यक है[३७] परन्तु यदि वह असम्भव हो तो किसी अन्य प्रकारसे देना भी यथेष्ट होगा[३८]। किन्तु दे देना आवश्यक है[३९]। इसका लेख भी यथासम्भव होना चाहिए और रजिस्टरी होना चाहिए। प्रातःकाल दत्तक लेनेवाला पिता मन्दिरमें जाकर द्वारोद्घाटन करके श्री तीर्थङ्करदेवकी पूजा करे और दिनमें कुटुम्ब एवं बिरादरीके लोगोंको इकट्ठा करके उनके सामने पुत्र-जन्मका उत्सव मनावे और सब आवश्यक संस्कार पुत्र-जन्मकी भाँति करे। इससे प्रकट होता है कि श्री तीर्थंकरदेवकी पूजा और वास्तवमें गोदमें दे देना अत्यन्त आवश्यक बातें हैं। परन्तु रिवाजके अनुसार यदि वास्तवमें गोदमें दे दिया गया है तो वह भी अनुमानतः यथेष्ट माना जाय। हिन्दू लॉके अनुसार पुत्रके माता पिताके अतिरिक्त और कोई उसका सम्बन्धी गोद नहीं दे सकता। परन्तु जैन-लॉमें ऐसा कोई प्रतिबन्धक नियम नहीं है। जैन नीतिके अनुकूल अनाथ भी गोद लिया जा सकता है[४०]। यदि पुत्र वयस्प्राप्त

---

३४. अर्हन्नीति ५५–५६।

३५. हसन अली ब० नागामल १ इला० २८८। मानकचन्द ब० मुन्नालाल ९५ पञ्जाब रे० १९०९ = ४ इण्डियन केसेज ८४४; मनोहरलाल ब० बनारसीदास २९ इला० ४९५; अशरफी कुंवर ब० रूपचन्द ३० इला० १९७; जमनाबाई ब० जवाहरमल ४६ इण्डि० के० ८१।

३६. लक्ष्मीचन्द ब० गट्टो० ८ इला० ३१९, हसन अली ब० नागामल १ इला० २८८।

३७. भद्र० ४९-५१; अर्ह० ५९–६५; गौड़का हिन्दू कोड़ द्वि० वृ० ३९६।

३८. शिवकुंवर ब० जीवराज २५ कल० वी० नो० २७३ प्री० कौं०।

३९. ,, ,, ,, ,, ।
जमनाबाई ब० जुहारमल ५६ इण्डि० के० ८१, जीवराज ब० शिवकुंवर ६६ इण्डि० के० ६५।

४० गौडका हिन्दू कोड द्वि० वृ० ३६७। पुरुषोत्तम ब० बेनीचन्द २३ बम्बई लॉ रिपोर्टर ३२७ = ६१ इण्डि० के० ४९२।

(बालिग) हो तो उसकी सम्मति या छोटी अवस्थामें उसके किसी सम्बन्धीकी सम्मति भी पर्याप्त होगी[४१]। यदि माता और कुटुम्बी जन सहमत हों तो पुत्र गोद दिया जा सकता है[४२]।

जब कोई विधवा गोद ले तो उस विधवाको चाहिए कि सर्व सम्पत्तिका भार अपने दत्तक पुत्रको सौंप दे और स्वयं धर्म-कार्यमें संलग्न हो जाय[४३]।

दत्तक पुत्र लेनेका परिणाम

दत्तक पुत्र औरस पुत्रके समान ही होता है[४४]। माता पिताके जीवन पर्यन्त दत्तक पुत्रको कोई अधिकार उनकी और पैतामहिक (मोरूसी अर्थात् बाबाकी) सम्पत्तिको बेचने वा गिरवी रखनेका नहीं है[४५]।

यदि दत्तक पुत्र अयोग्य (कुचलन) हो या सदाचारके नियमोंके विरुद्ध कार्य करने लगे या धर्म-विरुद्ध हो जाय और किसी प्रकार न माने, तो उसे न्यायालय द्वारा चाहे वह विवाहित हो अथवा अविवाहित हो घरसे निकाल दे और न्यायालयके द्वारा उससे पुत्रत्व सम्बन्ध तोड़ दे[४६]। फिर उसका कोई अधिकार शेष नहीं रहेगा[४७]। इससे यह प्रकट है कि जैन-लॉमें पुत्रत्व तोड़नेका (declaratory*) मुकदमा हो सकता है। उस मुकदमेका फैसला करते समय प्राकृतिक न्यायको लक्ष्य रक्खा जायगा। अर्हन्नीतिके शब्द इस विषयमें इतने विशाल हैं कि उसमें औरस पुत्र भी आ जाता है[४८]।

यदि दत्तक पुत्र मातापिताकी प्रेमपूर्वक सेवा करता है और उनका आज्ञाकारी है तो वह औरसके समतुल्य ही समझा जायगा[४९]।

---

४१. मानकचन्द ब० मुन्नालाल ९५ पञ्जाब रे० १९०९ = ४ इण्डि० के० ८४४।

४२. अशरफी कुंअर ब० रूपचन्द ३० इला० १९७।

४३. भद्र० ५५ और ६६।

४४. अर्ह० ५८।

४५. भद्र० ६०।

४६. भद्र० ५२–५४; वर्ध० २५–२९; अर्ह० ८६–८८।

४७. ,, ५४; ,, ,, २७; ,, ८८।

* Declaration—सूचना घोषणा।

४८. अर्ह० ८६—८८ और ९५।

४९. ,, ,, ५८।

यदि दत्तक लेनेके पश्चात् औरस पुत्र उत्पन्न हो जाय तो दत्तकको चतुर्थ भाग सम्पत्तिका देकर पृथक् कर देना चाहिए[५०]।

परन्तु यह नियम तब ही लागू होगा जब वह पुत्र पिताकी सवर्णा स्त्रीसे उत्पन्न हो। असवर्णा स्त्रीकी सन्तान केवल गुजारेकी अधिकारी है, दाय भागकी अधिकारी नहीं है[५१]। परन्तु यह विषय कुछ अस्पष्ट है क्योंकि अनुमानतः यहाँ असवर्णा शब्दका अर्थ शूद्रा स्त्रीका है। क्योंकि जैन नीतिमें उच्च जातिके पुरुषकी सन्तान, जो शूद्र स्त्रीसे हो, गुजारे मात्रकी अधिकारी है। अनुमानतः रचयिताके विचारमें केवल यह विषय था कि वैश्य पिताके एक वैश्य वर्ण और दूसरी शूद्र वर्णकी ऐसी दो स्त्रियाँ हों और दत्तक लेनेके पश्चात् उस पिताके पुत्र उत्पन्न हो जाय तो यदि यह पुत्र वैश्य स्त्रीसे उत्पन्न हुआ है तो दत्तक पुत्रको सम्पत्तिका चतुर्थ भाग दिया जायगा और शेष औरस पुत्र लेगा, परन्तु यदि पुत्र शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न हुआ है तो वह दत्तक पुत्रको अनधिकारी नहीं कर सकेगा केवल गुजारा पायेगा जो उसे जैन-लॉके अनुसार प्रत्येक दशामें मिलता।

पगड़ी बाँधनेके योग्य औरस पुत्र ही होता है[५२]। परन्तु यदि औरस पुत्रके उत्पन्न होनेसे प्रथम ही दत्तक पुत्रके पगड़ी बाँध दी गई है तो औरस पुत्रके पगड़ी नहीं बँधेगी, किन्तु दोनों समान भागके अधिकारी होंगे[५२]।

औरस तथा दत्तक दोनों ही प्रकारके पुत्र यदि माताकी आज्ञाके पालनमें तत्पर, विनीत एवं अन्य प्रकार गुणवान हों और विद्योपार्जन में संलग्न रहें तो भी वे साधारण कुल-व्यवहारके अतिरिक्त कोई विशेष कार्य माताकी इच्छा तथा सम्मतिके बिना नहीं कर सकते[५३]। यह नियम पुत्रकी नाबालगीके सम्बन्धमें लागू होता मालूम पड़ता है अथवा उस सम्पत्तिसे लागू है जो माताको दाय भागमें मिली है जिसके प्रबन्ध करनेमें पुत्र स्वतन्त्र नहीं है। अन्य अवस्थाओंमें यह नियम परामर्श तुल्य ही है[५४]।

●

---

५०. भद्र० ९३–९४, वर्ध० ५–६; अर्ह० ६७–६८। ऋषभ ब० चुन्नीलाल अम्बूशेठ १६ बम्बई ३४७।

५१. अर्हन्नीति ६६; वर्ध० ४।

५२. भद्र० ९३–९४; वर्ध० ५–६; अर्ह० ६७–६८।

५३. वर्ध० १८–१९; अर्ह० ८३–८४।

५४. अर्ह० १०४।

द्वितीय परिच्छेद

विवाह

पुरुषको ऐसी कन्या से विवाह करना चाहिए जो उसके गोत्रकी न हो वरन् किसी अन्य गोत्रकी हो परन्तु उस पुरुषकी जातिकी हो और जो आरोग्य, विद्यावती, शीलवती हो और उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हो[1]। वर भी बुद्धिमान्, आरोग्य, उच्च कुलीन, रूपवान् और सदाचारी होना चाहिए[2]। जिस कन्याकी जन्मराशि पतिकी जन्मराशिसे छठी या आठवीं न पड़ती हो ऐसी कन्या वरने योग्य है[3]। उसको पतिके वर्णसे विभिन्न वर्णकी नहीं होनी चाहिए[4]। कन्या रूपवती हो तथा आयु और डीलडौलमें वरसे न्यून हो[4]। परन्तु यह कोई आवश्यक नियम नहीं है। गोत्रके विषयमें नियम प्रतिबन्धक (लाजिमी) है[5]। बुआकी लड़की, मामाकी लड़की और सालीके साथ विवाह करनेमें दोष नहीं है[6]। परन्तु ऐसा बहुत कम होता है और इस विषयमें स्थानीय रिवाजका ध्यान रखना होगा[7]। मौसीकी लड़की अथवा सासूकी बहिनसे विवाह करना मना है[8]। गुरुकी पुत्रीसे भी विवाह अनुचित है[9]। यदि विवाहका इकरार हो चुका है और लड़कीके पक्षवाले उसपर कार्यबद्ध न रहें तो वह हर्जाके जिम्मेदार हैं[10]। यही नियम दूसरे पक्षवालों पर भी अनुमानतः लागू होगा। परन्तु अब इन विषयोंका निर्णय प्रचलित कानून अर्थात् ऐक्ट मुआहिदे (दि इण्डियन कोन्ट्रैक्ट ऐक्ट) के अनुसार किया जायगा। यदि

---

१. त्रैवर्णाचार अध्याय ११ श्लोक ३।
२. ,, ,, ,, ४।
३. ,, ,, ,, ३५।
४. ,, ,, ,, ३६, ४०।
५. ,, ,, ,, ३८, १७५।
६. ,, ,, ,, ३७।
७. ,, ,, ११—३७; सोमदेव नीति (देश कालापेक्षो मातुल सम्बन्धः)।
८. त्रै० अ० ११ श्लो० ३८।
९. ,, ,, ४०।
१०. अर्ह० १२७।

विवाहके पूर्व कन्याका देवलोक हो जाय तो खर्चा काटकर जो कुछ उसको ससुरालसे मिला था (गहना आदि) लौटा देना चाहिए[11]। और उसे अपने भाईके या ननिहालसे मिला हो वह उसके सहोदर भाइयोंको दे देना चाहिए[11]।

जैन-नीतिके अनुसार उच्च वर्णवाला पुरुष नीच वर्णकी कन्यासे विवाह कर सकता है[12]। परन्तु शूद्र स्त्रीसे किसी उच्च वर्णवाले पुरुषकी जो सन्तान होगी तो वह सन्तान पिताकी सम्पत्ति नहीं पावेगी[13]। केवल गुजारे मात्रकी अधिकारी होगी[14]। अथवा वही सम्पत्ति पावेगी जो उनके पिताने अपनी जीवनावस्थामें उन्हें प्रदान कर दी हो[15]। शूद्र पुरुषको केवल अपने वर्णमें अर्थात् शूद्र स्त्रीसे विवाह करनेका अधिकार है[16]। श्री आदिपुराणमें ऐसा नियम दिया हुआ है—

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः।
वहेत्स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्च ताः॥
पर्व १६, २४७ श्लोक।

इसका अर्थ यह है कि पुरुष अपनेसे नीचे वर्णकी कन्यासे विवाह कर सकता है। अपनेसे ऊँचे वर्णकी स्त्रीसे नहीं कर सकता। इस प्रकार ब्राह्मण चारों वर्णकी स्त्रियाँ, क्षत्रिय तीन वर्णकी, वैश्य दो वर्णकी और शूद्र केवल एक वर्णकी अर्थात् स्ववर्ण स्त्रीका पाणिग्रहण कर सकता है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह नियम पूर्व समयमें प्रचलित था। पश्चात्में ब्राह्मण पुरुषका शूद्र स्त्रीसे विवाह करना अनुचित समझा जाने लगा।

परस्परं त्रिवर्णानां विवाहः पंक्तिभोजनम्।
कर्तव्यं न च शूद्रैस्तु शूद्राणां शूद्रकैः सह॥
९/२५६॥[17]।

विवाहोंके भेद

ब्राह्म विवाह, दैव विवाह, आर्ष विवाह और प्राजापत्य विवाह यह चार

---

११. अर्ह० १२८।
१२. अर्ह० ३८—४०; भद्र० ३२-३३; इन्द्र० ३०-३१।
१३. ,, ३९—४१; इ० न० ३२।
१४. ,, ४०-४१; भद्र० ३५-३६।
१५. भद्र० ३५; इन्द्र० ३२—३४।
१६. अर्ह० ४४।
१७. धर्म संग्रह श्रावकाचार मेधावी रचित १५०५ ई० (१५६१ विक्रम संवत्)।

धर्मविवाह कहलाते हैं[१८] और आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच विवाह यह चार अधर्म विवाह कहलाते हैं[१८]।

बुद्धिमान् वरको अपने घर पर बुलाकर बहुमूल्य आभूषणों आदि सहित कन्या देना ब्राह्म विवाह है[१९]। श्रीजिनेन्द्र भगवान्की पूजा करनेवाले सहधर्मी प्रतिष्ठाचार्यको पूजाकी समाप्ति पर पूजा करानेवाला अपनी कन्या दे दे तो वह दैव विवाह है[२०]। यही दोनों उत्तम प्रकारके विवाह माने गये हैं क्योंकि इनमें वरसे शादीके बदलेमें कुछ लिया नहीं जाता। कन्याके वस्त्र या कोई ऐसी ही मामूली दामोंकी वस्तु वरसे लेकर धर्मानुकूल विवाह कर देना आर्ष विवाह है[२१]।

कन्या प्रदानके समय "तुम दोनों साथ साथ रहकर स्वधर्मका आचरण करो" ऐसे वचन कहकर विवाह कर देना प्राजापत्य विवाह कहलाता है[२२]। इसमें अनुमानतः वरकी ओरसे कन्याके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट होती है और शायद यह भी आवश्यकीय नहीं है कि वह कुंआरा ही हो[२३]। कन्याको मोल लेकर विवाह करना आसुर विवाह है[२४]। कन्या और वरका स्वयं निजेच्छानुसार माता पिताकी सम्मतिके बिना विवाह कर लेना गान्धर्व विवाह है[२५]। कन्याको बरजोरीसे पकड़कर विवाह कर लेना राक्षस विवाह है[२६]। अचेत, असहाय या सोती हुई कन्यासे भोग करके विवाहना पैशाच विवाह है[२७] यह सबसे निकृष्ट विवाह है।

आजकल केवल प्रथम प्रकारका विवाह ही प्रचलित है; शेष सब प्रकारके बन्द हो गये हैं। श्रीआदिपुराणके अनुसार स्वयंवर विवाह जिसमें कन्या स्वयं वरको चुने सबसे उत्तम माना गया है। परन्तु अब इसका भी रिवाज नहीं रहा।

---

१८. त्रि० अ० ११ श्लोक ७०।
१९. ,, ,, ,, ७१।
२०. त्रै० अ० श्लो० ७२।
२१. त्रै० अध्याय ११ श्लोक ७३।
२२. ,, ,, ७४।
२३. गुलाबचन्द सरकार शास्त्रीका हिन्दू-लॉ।
२४. त्रै० अध्याय ११ श्लोक ७५।
२५. ,, ,, ,, ७६।
२६. ,, ,, ,, ७७।
२७. ,, ,, ,, ७८।

विधवा विवाह

विधवा विवाह उत्तरी भारतमें प्रचलित नहीं है। परन्तु बरार और आस-पासके प्रान्तोंमें कुछ जातियोंमें होता है जैसे सेतवाल। पुराणोंमें कोई उदाहरण विधवा विवाहका नहीं पाया जाता है किन्तु शास्त्रोंमें कोई आज्ञा या निषेध स्पष्टतः इस विषयके सम्बन्धमें नहीं है। परन्तु त्रिवर्णाचारके कुछ श्लोक ध्यान देने योग्य हैं[२८]। इसलिए विधवा विवाह सम्बन्धी मुकदमोंका निर्णय देशके व्यवहारके अनुसार ही किया जा सकता है।

विवाह विधि

वाग्दान, प्रदान, वरण, पाणिपीड़न और सप्तपदी विवाहके विधानके पाँच अंग हैं[२९]।

वाग्दान (engagement) अथवा सगाई उस इकरारको कहते हैं जो विवाहके पूर्व दोनों पक्षोंमें विवाहके सम्बन्धमें होता है। प्रदानका भाव वरकी ओरसे गहना इत्यादिका कन्याको भेंट रूपसे देनेका है।

वर्ण कन्यादानको कहते हैं जो कन्याका पिता वरके निमित्त करता है। पाणिपीड़न या पाणिग्रहणका भाव हाथ मिलानेसे है। (क्योंकि विवाहके समय पर वर और कन्याके हाथ मिलाये जाते हैं)। सप्तपदी भाँवरोंको कहते हैं। कन्यादान पिताको करना चाहिए, यदि वह न हो तो बाबा, भाई, चाचा, पिता, गोत्रका कोई व्यक्ति, गुरु, नाना, मामा क्रमशः इस कार्यको करे[३०]। यदि कोई न हों तो कन्या स्वयं अपना विवाह कर सकती है[३१]। बिना सप्तपदीके विवाह पूर्ण नहीं समझा जा सकता[३२]।

सप्तपदीके पूर्व और पाणिग्रहणके पश्चात् यदि वरमें कोई जाति-दोष मालूम हो जाय या वर दुराचारी विदित हो तो कन्याका पिता उसे किसी दूसरे वरको विवाह सकता है[३३]। इस विषयमें कुछ मतभेद जान पड़ता है क्योंकि एक श्लोकमें शब्द पतिसंगसे पहले लिखा है[३४]। जैन–नीतिके अनुसार एक

---

२८. त्रै० अ० ११ श्लो० २० और २४।
२९. ,, व० अध्याय ११ श्लो० ४१।
३०. ,, अ० ११ ,, ८२।
३१. ,, ,, ,, ,, ८३।
३२. ,, ,, ,, ,, १०५।
३३. त्रै० अ० ११ श्लो० १७४।
३४. ,, ,, ,, ,, १७५।

पुरुष कई स्त्रियोंसे विवाह कर सकता है अर्थात् एक स्त्रीकी उपस्थितिमें दूसरी स्त्रीसे विवाह कर सकता है[३५]। विवाहके पश्चात् सात दिन तक वर और कन्याको ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिए। पुनः किसी तीर्थ क्षेत्रकी यात्रा करके किसी दूसरे स्थानपर परस्पर विहार करें और भोग-विलास (honey moon) में अपना समय बितावें[३६]।

३५. त्रै० अ० ११ श्लोक १७६ व १९७ व १९९ व २०४

३६. आदिपुराण अ० ३८ „ १३१—१३३।

तृतीय परिच्छेद

सम्पत्ति

जैन-लॉ के अनुसार सम्पत्तिके स्थावर और जङ्गम दो भेद हैं। जो पदार्थ अपनी जगह पर स्थिर है और हलचल नहीं कर सकता वह स्थावर है, जैसे गृह, बाग इत्यादि; और जो पदार्थ एक स्थानसे दूसरे स्थानमें सुगमतापूर्वक आ जा सकता है वह जङ्गम है[१]। दोनों प्रकारकी सम्पत्ति विभाजित हो सकती है। परन्तु ऐसा अनुरोध है कि स्थावर द्रव्य अविभाजित रक्खे जायँ[२]। क्योंकि इसके कारण प्रतिष्ठा और स्वामित्व बने रहते हैं (देखो अर्हन्नीति० श्लो० ५)।

दाय भागकी अपेक्षा सप्रतिबन्ध और अप्रतिबन्ध दो प्रकारकी सम्पत्ति मानी गई है। पहिले प्रकारकी सम्पत्ति वह है जो स्वामीके मरण पश्चात् उसके बेटे, पोतोंको सन्तानकी सीधी रेखामें पहुँचती है। दूसरी वह है जो सीधी रेखामें न पहुँचे वरन् चाचा, ताऊ इत्यादि कुटुम्ब सम्बन्धियोंसे मिले[३]।

सम्पत्ति जो विभाग योग्य नहीं है

निम्न प्रकारकी सम्पत्ति भाग योग्य नहीं है—

१—जिसे पिताने अपने निजी मुख्य गुणों या पराक्रम द्वारा प्राप्त किया हो; जैसे राज्य[४]।

२—पैत्रिक सम्पत्तिकी सहायता विना जो द्रव्य किसीने विद्या आदि गुणों द्वारा उपार्जन किया हो, जैसे, विद्या-ज्ञान द्वारा आय[५]।

३—जो सम्पत्ति किसीने अपने मित्रों अथवा अपनी स्त्रीके बन्धुजनोंसे प्राप्त की हो[६]।

---

१. भद्र० १४—१५, अर्ह० ३—४।

२. भद्र० १६ और ११२, अर्ह० ५।

३. अर्ह० २, इन्द्र० २।

४. भद्र० १००।

५. भद्र० १०२ और १०३, वर्ध० ३७—३८, अर्ह० १३३—१३५, इन्द्र० २१।

६. भद्र० १०२, अर्ह० १३३—१३५, वर्ध० ३७—३८।

४—जो खानोंमें गड़ी हुई उपलब्ध हो जावे अर्थात् दफीना आदि[७]।

५—जो युद्ध अथवा सेवा-कार्यसे प्राप्त हुई हो[८]।

६—जो साधारण आभूषणादिक पिताने अपनी जीवनावस्थामें अपने पुत्रों वा उनकी स्त्रियोंको स्वयं दे दिया हो[९]।

७—स्त्री-धन[१०]।

८—पिताके समयकी डूबी हुई सम्पत्ति जिसको किसी भाईने अविभाजित सम्पत्तिकी सहायता विना प्राप्त की हो[१०अ]। परन्तु स्थावर सम्पत्तिकी दशामें वह पुरुष जो उसे प्राप्त करे केवल अपने सामान्य भागसे चतुर्थ अंश अधिक पावेगा[११]।

विभाग

हिन्दू-लॉ के विरुद्ध जैन-लॉ विभागको उत्तम बतलाता है क्योंकि उससे धर्मकी वृद्धि होती है और प्रत्येक भाईको पृथक्-पृथक् धर्म-लाभका शुभ अवसर प्राप्त होता है[११अ]।

विभागयोग्य जो सम्पत्ति नहीं है उसे छोड़कर सब प्रकारकी सम्पत्ति नीति और मुख्य रिवाजके अनुसार (यदि कोई हो) दायादोंमें विभक्त हो सकती है[१२]।

पिताकी जो सम्पत्ति विभागयोग्य नहीं है उसको केवल सबसे बड़ा पुत्र ही पावेगा[१३]। वह पुत्र जो चोरी, विषय-सेवन अथवा अन्य व्यसनोंमें लिप्त है और अत्यन्त दुराचारी है अदालत के द्वारा अपने भागसे वंचित रक्खा जा सकता है[१४]। पिताकी उपार्जित सम्पत्ति जैसे राज्यादि, जो ज्येष्ठ पुत्रको मिली है,

---

७. भद्र० १०२।

८. वर्ध० ३७-३८, अर्ह० १३३—१३५।

९. अर्ह० १३२।

१०. भद्र० १०१, वर्ध० ३९—४५, इन्द्र० ४७-४८, अर्ह० १३६—१४३।

१०अ. वर्ध० ३७—३८, अर्ह० १३३—१३५।

११. इन्द्र० २० (मिताक्षरा लॉ का भी यही भाव है)।

११अ. भद्र० १३।

१२. इन्द्र० ४५, भद्र० ४।

१३. भद्र० १००।

१४. अर्ह० ८६—८७ और १२०।

उसमें छोटे भाइयोंको, जो विद्याध्ययनमें संलग्न हों, कुछ भाग गुजारे निमित्त मिलना चाहिए[१५]। परन्तु शेष (विभागयोग्य) सम्पत्तिमें अन्य सब भाई समान भागके अधिकारी हैं जिससे वे व्यापार आदि व्यवसाय कर सकते हैं[१६]।

पिताकी जीवन–अवस्थामें विभाग

बाबाकी सम्पत्तिमेंसे पुत्रोंको, उनकी माताओंको और पिताको समान भाग मिलने चाहिए[१७]। परन्तु यदि सम्पत्ति बाबाकी नहीं है और पिता की ही स्वयं उपार्जित है तो पुत्रोंको कोई अधिकार विभाजित करानेका नहीं है। जो कुछ भाग पिता प्रसन्नतापूर्वक पुत्रको पृथक् करते समय दे उसे उसीपर संतोष करना चाहिए[१८]।

माताकी जीवनावस्थामें जिस द्रव्यकी वह स्वामिनी है उसको भी पुत्र केवल उसकी इच्छानुसार ही पा सकते हैं[१८]।

माता पिताकी मृत्युके पश्चात् विभाग

पिताकी मृत्युके पश्चात् सब भाई पैत्रिक (बापकी) सम्पत्तिको समानतः बांट लें[१८]। प्रथम ऋण चुकाना चाहिए (यदि कुछ हो) तत्पश्चात् शेष सम्पत्ति विभक्त करना उचित है[१९]।

ज्येष्ठांसी

जैन–नीतिमें सबसे प्रथम उत्पन्न हुए पुत्रका अधिकार कुछ विशेष माना गया है[२०]। बाबाकी सम्पत्तिके अतिरिक्त पिताकी स्वयं उपार्जित सम्पत्तिको ज्येष्ठ पुत्र ही पायेगा। अन्य लघु पुत्र अपने ज्येष्ठ भ्राताको पिताके समान मानकर उसकी आज्ञामें रहेंगे[२१]। यह नियम राज्य अथवा बड़ी बड़ी रियासतोंसे लागू होगा। परन्तु राज्यादिकी अवस्थामें जो छोटे भाई अपने बड़े भाईकी आज्ञाका पालन करते रहेंगे उनके निर्वाह आदिका दायित्व बड़े भाईपर होगा। यह तो कानूनी परिणाम ही होता है।

विभागके समय सम्पत्तिको अपेक्षासे कुछ भाग (जैसे दशांश) ज्येष्ठ भ्राता-

---

१५. भद्र० ९८।

१६. भद्र० ९९।

१७. अर्ह० २७।

१८. भद्र० ४, अघ० ८, अर्ह० १५।

१९. भद्र० १११, अर्ह० १६।

२०. ,, ६।

२१. ,, ५।

के निमित्त पृथक् कर दिया जावे; शेष सम्पत्ति सब भाइयोंमें समानतः विभाजित की जावे। इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्र, और भाइयोंके समान भाग पायगा और उनसे कुछ अधिक ज्येष्ठांसीके उपलक्षमें भी पावेगा[२२]। यदि अन्य भाई वयःप्राप्त नहीं हैं तो वे बड़े भाईकी संरक्षकतामें रहेंगे और उनकी सम्पत्तिकी देखभाल और सुव्यवस्थाका भार भी ज्येष्ठ भाई पर होगा[२३]। बाबाकी सम्पत्ति सब भाइयोंमें बराबर बराबर बँटनी चाहिए[२४]। बाबाकी सम्पत्तिका भाग पीढ़ियोंकी अपेक्षासे होगा, भावार्थ—पुत्रोंकी गणनाके अनुसार। पौत्र अपने अपने पिताओंके भागको समानरूपेण बाँटेंगे[२५]।

यदि कोई मनुष्य विभागके पश्चात् मर जाय और कोई अधिक करीबी-वारिस न छोड़े तो उसका हिस्सा उसके भाई भतीजे पावेंगे[२५अ]।

यदि विभक्त हो जानेके पश्चात् पुनः सब भाई एकत्र हो जावें और फिर विभाजित हों तो उस समय ज्येष्ठांसीका हक नहीं माना जायगा[२६]।

यदि दो पुत्र एक समय उत्पन्न हुए हों तो उनमेंसे जो प्रथम उत्पन्न हुआ है वही ज्येष्ठ समझा जायगा[२७]। यदि प्रथमोत्पन्न पुत्री हो तत्पश्चात् पुत्र हुआ हो तो पुत्र ही ज्येष्ठ माना जायगा[२८]।

गोधन अर्थात् गाय भैंस घोड़ा इत्यादि विभागयोग्य हैं। परन्तु यदि कोई भागी पुरुष उनके रखनेके योग्य न हो तो उसका भाग भी दूसरे भागी निःसन्देह ले लें[२९]। अनुमानतः इस नियम पर वर्तमानकालमें जबकि गोधनका मूल्य अति अधिक हो गया है व्यवहार नहीं हो सकेगा। शायद पूर्व समयमें यह नियम उस दशामें लागू होता था जब कोई भागी किसी चतुष्पदको खिलाने और रखनेमें असमर्थ होता था तो उसके बदलेमें किसीसे कुछ याचना किये बिना ही अपने भागका परित्याग कर देता था। ऐसी दशामें उस भागका मूल्य देनेका दायित्व यों ही किसी पर न हो सकता था।

---

२२. भद्र० १७।
२३. अर्ह० २१।
२४. इन्द्र० २४।
२५. अर्ह० ९९।
२५अ. व० नी० ५२, और देखो अर्ह० ९०—९१।
२६. भद्र० १०४-१०५।
२७. ,, २२, अर्ह० २९।
२८. ,, २३, ,, ३०।
२९. भद्र० १८।

दामादकी अयोग्यता

निम्नलिखित मनुष्य दायभागसे वञ्चित समझे गये हैं—

१—पैदायशी नपुंसकता या ऐसे रोगका रोगी जो चिकित्सा करनेसे निरोग नहीं हो सकता[३०] ।

२—जो सब प्रकारसे सदाचारका विरोधी हो[३१] ।

३—उन्मत्त, लँगड़ा, अन्धा, रजील (क्षुद्र = नीच), कुब्जा[३२] ।

४—जातिच्युत, अपाहिज, माता पिताका घोर विरोधी, मृत्युनिकट, गूंगा, बहरा, अतीव क्रोधी, अङ्गहीन[३३] ।

ऐसे व्यक्ति केवल गुजारेके अधिकारी हैं, भागके नहीं[३४] । परन्तु यदि उनका रोग शान्त हो गया है तो वह अपने भागके अधिकारी हो जायेंगे[३५] । नहीं तो उनका भाग उनकी पत्नियों या पुत्रोंको यदि वे योग्य हों पहुँचेगा[३६] । या पुत्रीके पुत्रको मिलेगा[३७] । दायभागकी अयोग्यताका यह भाव नहीं है कि मनुष्य अपनी निजी सम्पत्तिसे भी वंचित कर दिया जावे (देखो भद्रबाहु० १०३) ।

जिस पुरुषको दायभाग लेनेकी इच्छा न हो उसको भी भाग न मिलेगा[३८] और जो पुरुष मांसादिक अभक्ष्य ग्रहण करता है वह भी भागसे वंचित रहेगा[३९] । इस बातका अनुमानतः निर्णय न्यायालयसे ही होगा और सम्भव है कि वर्तमान दशामें यह नियम परामर्श रूप ही माना जावे ।

साधुका भाग

यदि कोई पुरुष विभाजित होनेसे पूर्व साधु होकर चला गया हो तो स्त्री धनको छोड़कर, सम्पत्तिके भाग उसी प्रकार लगाने चाहिए, जैसे उसकी उपस्थिति-

---

३०. भद्र० ६९; अर्ह० ९२, ९३; इन्द्र० ४१-४२; वर्ध० ५२; ५३ ।

३१. इन्द्र० ४५ ।

३२. भद्र० ७०, अर्ह० ९३–९४, इन्द्र० ४१–४२, वर्ध० ५३ ।

३३. अर्ह० ९२—९३, इन्द्र० ४१–४२ व ४५ ।

३४. ,, ९, ,, १०, ४१–४२ व ४३ ।

३५. अर्ह० ६४; इन्द्र० ४३ ।

३६. ,, ९४ ।

३७. इन्द्र० ४४ ।

३८. इन्द्र० १० ।

३९. ,, ४२ ।

में होते और उसका भाग उसकी पत्नीको दे देना चाहिए[४०]। यदि उसके एक पुत्र ही है तो वह स्वभावतः अपने पिताके स्थानको ग्रहण करेगा। यदि कोई व्यक्ति अविवाहित मर जावे अथवा साधु हो जावे तो उसका भाग उसके भाई भतीजोंको यथायोग्य मिलेगा[४१]।

यदि वह विभाग होनेके पश्चात् मृत्युको प्राप्त हो तो उसका भाग भाई भतीजे समान रूपसे लेंगे[४२]। भद्रबाहु संहिताके अनुसार बहिन भी भागकी अधिकारिणी है[४२]। परन्तु अनुमानतः इस श्लोकका अर्थ कुँवारी बहिनसे है जिसके विवाहका दायित्व भाइयों पर ही है। उसका भाग भी उसके भ्राताओंके समान ही बताया गया है जो निस्सन्देह पद्यरचनाकी आवश्यकताओंके कारणवश है। क्योंकि अन्यथा बहिनका भाग भाईके समान होना नियम-विरुद्ध है। बहुत सम्भव है कि यह माप उसके विवाह-व्ययके निमित्त जो द्रव्य पृथक् किया जावे उसकी अन्तिम सीमा हो।

विद्याध्ययन एवं विवाह निमित्त लघु भ्राताओंके अधिकार

छोटे भाइयों का विवाह करके जो धन बचे उसे सब भाई समान बाँट लें[४३]। इस विषयमें विवाहमें विद्यापठन भी अर्हन्नीतिके शब्दोंके विस्तृत भावोंकी अपेक्षा सम्मिलित है[४३]।

माताके अधिकार

यदि पिताकी मृत्यु पश्चात् बाँट हो तो माताको पुत्रके समान भाग मिलता है[४४]। वास्तवमें उल्लेख तो यह है कि उसे पुत्रोंसे कुछ अधिक मिलना चाहिए जिससे वह परिवार और कुटुम्बकी स्थितिको बनाये रक्खे[४५]। इस प्रकार यदि ४ पुत्र और एक विधवा जीवित है तो मृतककी सम्पत्तिके ५ समान भाग किए जायेंगे जिनमेंसे एक माताको और शेष चार मेंसे एक-एक प्रत्येक भाईको मिलेगा। माताको कितना अधिक दिया जाय इसकी सीमा नियत नहीं है। परन्तु अर्हन्नीतिमें इस प्रकार उल्लेख है कि पिताके मरणके पश्चात् यदि बाँट हो तो प्रत्येक भाई अपने-अपने भागमेंसे आधा-आधा माताको देवें[४६]।

---

४०. भद्र० ८४; वर्ध० ४८; अर्ह० ९०।
४१. अर्ह० ९१।
४२. भद्र० १०६; वर्ध० ५२।
४३. वर्ध० ७; अर्ह० २०।
४४. भद्र० २१; वर्ध० १०; इन्द्र० २७।
४५. ,, २१; ,, १०; अर्ह० २८।
४६. अर्ह० २८।

इस प्रकार यदि चार भाई हैं तो प्रत्येक भाई चार आना हिस्सा पावेगा और माताका भाग चार आनेके अर्द्धभागका चौगुना होगा अर्थात् २×४=८ आना होगा। पिताकी जीवनावस्थामें माताको एक भाग बाँटमें मिलना चाहिए[४७]। पुत्रोत्पत्ति होनेसे माता एक भागकी अधिकारिणी हो जाती है[४८]। माताका वह भाग उसके मरण पश्चात् सब भाई परस्पर समानतासे बाँट लें[४९]।

बहिनोंका अधिकार

विभाजित होनेके पश्चात् जो सम्पत्ति पिताने छोड़ी है उसमें भाई और कुँवारी बहिनको समान भाग पानेका अधिकार है। यदि दो भाई और एक बहिन है तो सम्पत्ति तीन समान भागोंमें बँटेगी[५०]। बड़ा भाई छोटी बहिनका, छोटे भाईकी भाँति, पालन करे[५१], और उचित दान देकर उसका विवाह करे[५२]। यदि ऐसी सम्पत्ति बचे जो बाँटने योग्य न हो तो उसे बड़ा भाई ले लेवे[५३]। यह अनुमान होता है, कि बहिनका भाग केवल विवाह एवं गुजारे निमित्त रक्खा गया है, अन्यथा भाईकी उपस्थितिमें बहिनका कोई अधिकार नहीं हो सकता। यदि विभक्त होनेके पश्चात् कोई भाई मर जाय तो उसकी पैत्रिक सम्पत्तिको उसके भाई और बहिन समान बाँट लें[५४]। ऐसा उसी दशामें होगा जब मृतकने कोई विधवा या पुत्र न छोड़ा हो। यहाँ भी बहिनका अर्थ कुँवारी बहिनका है जिसके विवाह और गुजारेका भार पैत्रिक सम्पत्ति पर पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका यह दायत्व सप्रतिबन्ध दायभागकी दशामें मान्य नहीं हो सकता अर्थात् उस सम्पत्तिसे लागू नहीं हो सकता जो चाचा ताऊसे मिली हो[५४]।

विधवा भावजका अधिकार

विधवा भावज अपने पतिके भागको पाती है और उसको अपने पतिके

---

४७. अर्हं० २७।
४८. इन्द्र० २५।
४९. भद्र० २१, वर्ध० १०, अर्हं० २८।
५०. इन्द्र० २७—२९।
५१. ,, २८।
५२. ,, २९।
५३. ,, ३०।
५४. भद्र० १०६।

जीवित भाइयोंसे अपना भाग पृथक् कर लेनेका अधिकार है[५५]। यदि वह कोई पुत्र गोद लेना चाहे तो ले सकती है[५६]। परन्तु ऐसे भाईकी विधवाका जो पहिले ही अलग हो चुका हो विभागके समय कोई अधिकार नहीं है। यदि कोई भाई साधू होकर अथवा संन्यास लेकर चला गया है तो उसका भाग विभागके समय उसकी स्त्री पावेगी[५७]।

विभाग एवं पुनः एकत्र होनेके नियम

एक भागाधिकारीके पृथक् हो जानेसे सबकी पृथकता हो जाती है[५८]। विभाजित होनेसे पूर्व सब भाई सम्मिलित समझे जाते हैं[५८]। परन्तु विभाग पश्चात् भी जितने भाई चाहें फिर सम्मिलित हो सकते हैं[५९]। विभाग पश्चात् यदि कोई भाई और पैदा हो जाय जो विभाग समय माताके गर्भमें था तो वह भी एक भागका अधिकारी है और विभाग पश्चात् आय व्ययका हिसाब लगाकर उसका भाग निर्धारित होगा[६०]। सामान्यतः उन पुत्रोंको जो विभाग पश्चात् उत्पन्न हुए हों कोई अधिकार पुनः विभाग करनेका नहीं है। वह केवल अपने पिताका भाग पा सकते हैं[६१]। हिन्दू—लॉ में विभाग समय यदि पिताने अपने निमित्त कोई भाग नहीं लिया है और उसके पश्चात् पुत्र उत्पन्न होवे जिसके पालन-पोषणका कोई आधार नहीं हो तो वह पुत्र अपने पृथक् हुए भाइयोंसे भाग पानेका अधिकारी है[६२]। अनुमानतः जैन-नीतिमें भी इन्द्रनन्दि जिन संहिताके २६वें श्लोकका यही आशय है, विशेषकर जब उसको २७वें श्लोकके साथ पढ़ा जावे। दोनों श्लोकोंको एक-साथ पढ़नेसे ऐसा ज्ञात होता है

---

५५. अर्ह० १३१, व घीसनमल ब० हर्षचन्द (अवध) सेलेक्ट केसेज नं० ४३ पृ० ३४।

५६. अर्ह० १३१।

५७. भद्र० ८५, वर्ध० ४८, अर्ह० ९०।

५८. अर्ह० १३०।

५८. अर्ह० १३०।

५९. भद्र० १०४—१०५।

६०. अर्ह० ३७, इन्द्र० २६।

६१. ,, ३६, भद्र० १०९।

६२. गौड़का हिन्दू-कोड़ द्वि० वृ० पृ० ७५२, गनपत ब० गोपालराव २३ बम्बई ६३६, चेंगामा ब० मुन्नी स्वामी २० मद्रास ७५, कुछ अंशोंमें इस सम्मति-की पुष्टि प्रीवी कौं० के फैसला मुकदमा विशनचन्द ब० असमेदा ६ इलो० ५६० विशेषतः ५७४–५७५ पृष्ठसे होती है।

कि इनका सम्बन्ध ऐसी दशासे है कि जब पिताने अपनी सम्पत्ति कुछ अन्य जनोंको दे दी है और शेष अपने पुत्रोंमें विभक्त कर दी है।

अन्यान्य वर्णोंकी स्त्रियोंकी सन्तानमें विभाग

यदि ब्राह्मण पिता है और चारों वर्णोंकी उसकी स्त्रियाँ हैं तो शूद्राके पुत्रको हिस्सा नहीं मिलेगा[६३]। परन्तु शेष तीन वर्णोंकी सन्तानमें इस प्रकार विभाग होगा कि ब्राह्मणीके पुत्रको चार भाग, क्षत्राणीके पुत्रको तीन भाग और वैश्याणीके पुत्रको दो भाग मिलेंगे[६४]। भद्रबाहु संहिता और अर्हन्नीति, दोनोंमें, ऐसा उल्लेख है कि विभाज्य सम्पत्तिके दस समान भाग करने चाहिए जिनमेंसे चार ब्राह्मणीके पुत्रको, तीन क्षत्राणीके पुत्रको, दो वैश्याणीके पुत्रको देने चाहिए और एक अवशिष्ट भाग धर्मकार्यमें लगा देना चाहिए (देखो भद्रबाहु संहिता ३२ और अर्हन्नीति ३८, ३९)।

यदि क्षत्रिय पिता हो और उसके क्षत्राणी और वैश्याणी तथा शूद्राणी तीन स्त्रियाँ हों तो शूद्राणीके पुत्रको कुछ भाग नहीं मिलेगा। क्षत्राणीके पुत्रको दो भाग और वैश्याणीके पुत्रको एक भाग मिलेगा[६५]। अर्थात् क्षत्राणी और वैश्याणीके पुत्रोंमें क्रमसे दो और एककी निस्वतमें सम्पत्तिके भाग कर दिये जायेंगे। जैन-लॉके अनुसार उच्च वर्णके पुरुष द्वारा जो शूद्रासे पुत्र हो उसे भाग नहीं मिलता है[६६]। केवल वह गुजारा पानेका अधिकारी है[६७]। या जो कुछ उसका पिता अपनी जीवनावस्थामें उसको दे गया हो वह उसको मिलेगा[६८]। इन्द्रनन्दि जिन, संहिताका इस विषयमें कुछ मतभेद है (देखो श्लोक ३०-३१)। वह ब्राह्मण पितासे जो पुत्र ब्राह्मणी क्षत्राणी और वैश्याणीसे हों उनके भागोंके विषयमें भद्रबाहु व अर्हन्नीतिसे सहमत है (देखो श्लोक ३०)। परन्तु दूसरे श्लोकका यह उल्लेख है कि क्षत्रिय पिताके क्षत्राणीसे उत्पन्न हुए पुत्रको तीन भाग और वैश्याणीके पुत्रको दो भाग मिलेंगे, और यह भी उल्लेख है कि वैश्य माता पिताके लड़के दो दो भागोंके और शूद्र माताके लड़के एक भागके अधिकारी हैं (देखो श्लोक ३१)। यदि यही अर्थ ठीक है तो इससे विदित होता है कि शूद्रा माताकी सन्तान भी भागाधिकारी कभी गिनी गई

---

६३. भद्र० ३१–३३, अर्ह० ३८-३९।

६४. भद्र० ३१–३३, अर्ह० ३८-३९, इन्द्र० ३०।

६५. अर्ह० ४०, भद्र० ३५।

६६. ,, ३९–४१, भद्र० ३६, इन्द्र० ३२।

६७. ,, ३९–४१, ,, ३६।

६८. भद्र० ३५।

थी। अन्यान्य वर्णोंमें पारस्परिक विवाहका कम हो जाना इस मतभेदका कारण हो सकता है। या शूद्रोंके जातिभेदके कारण हो सकता है। परन्तु जिन संहिता ही में शूद्र स्त्रीकी सन्तानका अन्ततः दायसे वंचित किया जाना ३२वें श्लोकमें मिलता है। वैश्य पिताके पुत्र जो सवर्णा स्त्रीसे हों पिताकी सब सम्पत्ति पावेंगे[६९]। यदि शूद्रासे कोई पुत्र हो तो वह भागाधिकारी न होगा[७०]। शूद्र पिता और शूद्रा माताके पुत्र अपने पिताकी सम्पत्ति बराबर बराबर पावेंगे[७१]।

दासीपुत्रोंके अधिकार

जैन-नीतिमें दासीपुत्रोंका कोई अधिकार नहीं है[७२]। परन्तु वे गुजारेके अधिकारी हैं[७३]। और जो बापने उन्हें अपनी जीवनावस्थामें दे दिया है वह उनका है[७४]। उच्च वर्णवाले भाईको चाहे वह छोटा ही हो और यदि एकसे अधिक हों तो सब उच्च वर्णवाले भाइयोंको मिलकर उनके पालन पोषणका प्रबन्ध करना चाहिए[७५]।

यदि किसी शूद्रके दासी पुत्र उत्पन्न हो तो वह विवाहिता स्त्रीके पुत्रसे अर्ध भाग पायेगा[७६]। इससे यह अनुमान होता है कि विवाहिता स्त्रीके पुत्रके अभावमें शूद्रका दासीपुत्र ही उसकी सर्व सम्पत्तिका अधिकारी हो जायगा। उच्च जातियोंमें दासीपुत्रका कोई भाग दायमें नहीं रक्खा है[७७]।

अविभाजित सम्पत्तिमें अधिकार

आभूषण, गोधन, अनाज और इसी प्रकारकी सर्व जङ्गम सम्पत्तिका मुख्य स्वामी पिता है[७८]। परन्तु स्थावर सम्पत्तिका पूर्ण स्वामी न पिता होता है

६९. अर्ह० ४१, भद्र० ३६।
७०. ,, ४१, ,, ३६।
७१. ,, ४४, ,, ३७।
७२. भद्र० ३४, और देखो अम्बाबाई ब० गोविन्द २३ बम्बई २५७।
७३. अर्ह० ४३।
७४. ,, ४२।
७५. भद्र० ३४।
७६. अर्ह० ४५।
७७. अम्बाबाई ब० गोविन्द २३ बम्बई २५७।
७८. इन्द्र० ४, अर्ह० ६।

न पितामह[७९]। अर्थात् उनको उसके बेचनेका अधिकार नहीं है। इसका कारण यह है कि जिस मनुष्यने संसारमें खानेवाले पैदा किये हैं वह उनके पालन पोषणके आधारसे उनको वंचित नहीं कर सकता।

पितामहके जीवन-कालमें उसकी स्थावर सम्पत्तिको कोई नहीं ले सकता। परन्तु जङ्गम द्रव्य आवश्यकतानुसार कुटुम्बका प्रत्येक व्यक्ति व्यय कर सकता है[८०]। यदि कोई व्यक्ति अपनी पैत्रिक सम्पत्तिमेंसे अपनी बहिन या भानजको कुछ देना चाहे तो उसका पुत्र उसका विरोध कर सकता है[८१]।

पुत्रकी सम्मतिके बिना पैत्रिक सम्पत्तिके देनेका अधिकार पिताको नहीं है[८२]। बाबाकी अविभाजित सम्मति भ्रातृवर्गकी सम्मतिके बिना किसीको नहीं दी जा सकती है[८३]। न वह पुत्री, दौहित्र, बहन, माता अथवा स्त्रीके किसी संबंधीको ही दी जा सकती है[८४]। स्थावर सम्पत्ति और मवेशी भी जो किसी मनुष्यने पुत्रोत्पत्तिके पूर्व प्राप्त किए हैं, पुत्र होनेके पश्चात् उनको बेच या दे नहीं सकता है[८५]। क्योंकि सब बालक जो उत्पन्न हुए हैं या गर्भमें हैं चाहे वे भाग करानेके अधिकारी हों या न हों उसमेंसे भरण पोषणका सब अधिकार रखते हैं[८६]।

हिन्दू-कानूनके अनुसार जब पुत्र बालिग (वयःप्राप्त) हो जाय तो वह पिताकी स्वयं उपार्जित सम्पत्तिमेंसे भरण-पोषणका अधिकार नहीं माँग सकता, यद्यपि पैत्रिक सम्पत्तिमें उसे ऐसा अधिकार है[८७]। यही आशय जैन-कानूनका भी है। क्योंकि पिताकी सम्पत्तिमें भी उसकी मृत्यु पश्चात् पुत्र सदा ही अधिकारी नहीं होते, किन्तु विधवा माता और कभी-कभी ज्येष्ठ भाई ही उसको पाता है। कुटुम्बकी सब स्थावर सम्पत्ति जात या अजात पुत्रोंके या दूसरे उन मनुष्योंके होते हुए जिनको अपना भरण पोषण पानेका अधिकार है, धार्मिक कार्यों,

---

७९. इन्द्र० ४, अर्हं० ६।

८०. ,, ५।

८१. भद्र० ९१।

८२. भद्र० ९१—९२; अर्हं० ९६।

८३. अर्हं० ९६; वर्ध० ४९—५१।

८४. वर्ध० ४९—५१।

८५. इन्द्र० ६; अर्हं० ८।

८६. अर्हं० ९—१०।

८७. गौंडका हिन्दू कोड द्वि० वृ० पृ० ४७२; अम्मा कन्नू ब० अप्पू ११ मद० ९१।

तीर्थयात्रा व मित्रोंके सहायतार्थ भी न दी जा सकती[८८]। यदि कोई अन्य विरोधी न हो तो स्त्रीको विरोध करनेका अधिकार है, चाहे सम्पत्ति किसी अच्छे कार्यके लिए दी जाय या अन्य प्रकारसे[८९]। क्योंकि कौटुम्बिक सम्पत्तिसे उचित प्रकारसे भरण पोषण पानेका उसका भी अधिकार है।

माता, पिता, भाई आदि सब मिलकर सम्पत्ति पृथक् कर सकते हैं[९०]। यदि पुत्र वयःप्राप्त न हो तो पिता योग्य आवश्यकताके लिए उसे (सम्पत्तिको) बेच सकता है या दे सकता है[९१]। जो सम्पत्ति माताने पितासे विरसेमें पाई हो उसमें भी ऐसा ही समझना चाहिए। संतानकी नाबालगीमें माताको भी सम्पत्तिके पृथक् करनेमें वही बाधाएँ पड़ती हैं जो पिताको होती हैं[९१]। विभाजित तथा अविभाजित दोनों प्रकारकी सम्पत्तियोंमेंसे धार्मिक एवं कौटुम्बिक आवश्यकताओंके लिए पुत्रोंकी सम्पत्ति बिना भी पिताको व्यय करनेका अधिकार है[९२]।

पितामहकी सम्पत्तिमें, चाहे वह जंगम हो या स्थावर, पिता और पुत्र समानाधिकारी हैं[९३]। पिताकी सम्पत्तिका, पौत्रके न होने पर, पुत्रको पूर्ण अधिकार है और जिस भाँति वह चाहे उसे व्यय कर सकता है[९४]। क्योंकि ऐसा करनेसे उसे रोकनेवाला कोई नहीं है[९५]। जो जंगम द्रव्य माताने पुत्रको व्यापार या प्रबन्ध करनेके लिए दिया हो उसे व्यय कर डालनेका पुत्रको अधिकार नहीं है[९६]। माता पिताके जीवनमें दत्तक पुत्रको उनकी अथवा बाबाकी दोनों प्रकारकी सम्पत्तिको पृथक् करनेका कोई अधिकार नहीं है[९७]। औरस पुत्रके सम्बन्धमें भी यही नियम है[९८]। परन्तु बाबाकी सम्पत्तिमें पुत्रोंको विभाग करनेका अधिकार है[९९]। पुत्र हों या न हों पिताको अधिकार है कि

---

८८. इन्द्र० ७—८। जो सम्पत्ति माताको पितासे मिली हो उसमें भरण पोषण पानेका पुत्रको अधिकार है (देखो अर्ह० १२६)।

८९. वर्ध० ५१; अर्ह० ९६।

९०. इन्द्र० ८—९।

९१. अर्ह० ११।

९२. भद्र० ६२।

९३. अर्ह० ९७; इन्द्र० २५।

९४. इन्द्र० २।

९५. भद्र० ९२।

९६. भद्र० ६४।

९७. वर्ध० ४७।

९८. ,, १५; अर्ह० ८५।

९९. देखो विभाग प्रकरण।

अपनी मृत्युके पश्चात् अपनी विधवाके निमित्त तथा सुप्रबन्धार्थ किसी अन्य पुरुष द्वारा अपनी निजी सम्पत्तिका वसीयतके तौरपर प्रबन्ध करावे[१००]।

विभागके पश्चात् प्रत्येक भागीको अपने भागके मुन्तिकिल (व्यय) करनेका अधिकार है[१०१]। विधवा भी उस सम्पत्तिको जो अपने पतिसे पाई हो, चाहे जैसे व्यय कर सकती है, कोई उसको रोक नहीं सकता[१०२]। पति मरणके पश्चात् यदि सास या श्वसुरने उसको पुत्र गोद ले लिया है (तो जबतक वह दत्तक पुत्र वयःप्राप्त न हो) वह योग्य आवश्यकताओं अर्थात् धार्मिक कार्यों और कौटुम्बिक भरण पोषणके लिए सम्पत्तिको स्वयं व्यय कर सकती है[१०३]।

यदि पितामहके जीवनमें पौत्र मर जाय तो उसकी सम्पत्तिमें उसकी विधवा-को सास और श्वसुरके होते हुए कोई अधिकार नहीं है[१०४]। श्वसुरकी सम्पत्तिमें भी विधवा पुत्रवधूको सासके होते हुए कोई अधिकार नहीं है[१०५]। वह जायदादके व्ययका अधिकार नहीं रखती है किन्तु केवल रोटी कपड़ा पा सकती है[१०६]। तिस पर भी श्वसुर और सास चाहें तो पुत्रवधूको दत्तक लेनेकी आज्ञा दे सकते हैं[१०७]।

विधवा पुत्रवधू उस सम्पत्तिको, जो उसके पतिने अपने जीवनकालमें माता पिताको दे दी है, नहीं पा सकती है[१०८]। चाहे उसको अपना निर्वाह उस थोड़ीसी सम्पत्तिमें ही करना पड़े जो उसके पतिने उसको दे दी थी[१०९]। क्योंकि भद्र पुरुष उस सम्पत्तिको वापिस नहीं माँगा करते हैं जो किसीको दे दी गई हो[११०]।

यदि श्वसुर पहले मर जाय और पीछे पति मरे तो विधवा बहू अपने पतिकी

---

१००. वर्ध० २०—२१; अर्ह० ४६—४८।

१०१. भद्र० ६२; अर्ह० १२५।

१०२. अर्ह० ११५ व १२५।

१०३. भद्र० ११३ व ११७ वर्ध० ३५।

१०४. भद्र० ६३ व ११३—११४।

१०५. वर्ध० ३५; अर्ह०१०८; जनकुरी ब० बुधमल ५७ ई० केसेज २५७।

१०६. भद्र० ६३; अर्ह० १०२—१०३ व १०८।

१०७. भद्र० ११६—११७; वर्ध० ३५—३६, ५६।

१०८. अर्ह० ११२; भद्र० ११५; वर्ध० ५५।

१०९. भद्र० ११५; वर्ध० ५५।

११०. ,, ६८; इन्द्र० २६—२७।

पूर्ण सम्पत्तिकी स्वामिनी होगी[१११]। परन्तु उसको अपनी सासको और कुटुम्बको गुजारा देना उचित है[११२]। ऐसी दशामें सास दत्तक पुत्र नहीं ले सकती है[११३]। क्योंकि उस समय सम्पत्तिकी स्वामिनी पुत्रवधू है न कि सास[११४]। श्वसुरकी उपार्जित सम्पत्तिमें या बाबाकी सम्पत्तिमें जो श्वसुरके अधिकारमें आई हो विधवा पुत्रवधूको व्ययका अधिकार नहीं है[११५] परन्तु अपने मृत पतिकी स्वयं प्राप्त की हुई सम्पत्तिको व्यय कर देनेका अधिकार है[११६]। श्वसुरके मर जाने पर विधवा पुत्रवधूका पुत्र अपने पितामहकी सम्पत्तिका स्वामी होता है विधवा पुत्रवधूको केवल गुजारेका-अधिकार है[११७]। इसलिए यदि पितामहके जीवनकालमें मर गया हो तो विधवा माता अपने श्वसुरकी सम्पत्तिको अपने पुत्रकी सम्मति बिना व्यय नहीं कर सकती[११८]।

विवाहिता पुत्रीका अपने भाइयोंकी उपस्थितिमें पिताकी सम्पत्तिमें कोई भाग नहीं है[११९]। जो कुछ उसके पिताने विवाहके समय उसे दे दिया हो वही उसका है[११९]। विवाहिता लड़कियाँ अपनी अपनी माताओंके स्त्रीधनको पाती हैं[१२०]। पुत्रीके अभावमें दौहित्री और उसके भी अभावमें पुत्र माताके स्त्रीधनका अधिकारी होता है[१२१]। अविवाहिता पुत्री एक हो या अधिक, भाइयोंकी उपस्थितिमें पिताकी सम्पत्तिमेंसे गुजारे और विवाह व्ययके अतिरिक्त भाग पानेकी अधिकारी नहीं है[१२२]।

विभागकी विधि

प्रथम ही तीर्थंकर भगवान्‌की पूजा (मन और भावोंकी शुद्धताके निमित्त)

---

१११. भद्र० ६५।

११२. भद्र० ६३, ६५; ७७।

११३. ,, ७५।

११४. भद्र० ७६।

११५. ,, ६१; अर्ह० १०१—१०२।

११६. अर्ह० १०२।

११७. ,, १०३।

११८. ,, १०१।

११९. भद्र० २०; अर्ह० २६।

१२०. इन्द्र० १४।

१२१. ,, १५।

१२२. भद्र० १९; वर्ध० ९, अर्ह० २५।

करना चाहिए। इसके पश्चात् कुछ प्रतिष्ठित मनुष्योंके समक्ष अविभाजित सम्पत्तिका अनुमान कर लेना चाहिए और उसमेंसे पुत्रका भाग निकाल देना चाहिए[१२३]। इसी प्रकार अन्य भाग भी लगा लेने योग्य हैं। यदि पिताने स्वार्थवश या द्वेष भावसे अपनी स्त्रियोंके या अयोग्य दायादोंके स्वत्वोंकी ओर ध्यान नहीं दिया है, या विभागमें कोई अन्याय किया गया है तो वह अमान्य होगा[१२४]। परन्तु विभाग धर्मानुकूल किया गया है तो वह मान्य होगा, चाहे किसीको कुछ कम ही मिला हो (१२५)। वास्तवमें विभाग अधर्म और अन्यायसे न होना चाहिए[१२५]। ऐसे पिताका किया हुआ विभाग अयोग्य होगा जो अत्यन्त अशान्त, क्रोधी, अति वृद्ध, कामसेवी, व्यसनी, असाध्य रोगी, पागल, जुआरी, शराबी आदि हो[१२६]। यदि बड़ा भाई विभाग करते समय कुछ सम्पत्ति कपट करके छोटे भाइयोंसे छिपा ले तो वह दण्डनीय होगा और अपने भागसे वञ्चित किया जा सकता है[१२७]। यदि भाइयोंमें सम्पत्ति विभागके विषयमें झगड़ा हो तो नियमानुसार न्यायालय अथवा पंचायत द्वारा निर्णय करा लेना चाहिए[१२८]। यदि विभागके विषयमें कोई सन्देह उत्पन्न हो (जैसे कौन कौनसी जायदाद किस किस अधिकारीने पाई) तो ऐसी दशामें पञ्चों या न्यायालयके समक्ष मौखिक अथवा लिखित साक्षी द्वारा निर्णय करा लेना चाहिए[१२९]। प्रथम ऋण चुका देना चाहिए, या ऋण चुकानेके लिए प्रबन्ध करके शेष सम्पत्तिके भाग कर लेना चाहिए[१३०]। वस्त्र, आभूषण, खत्तियां और इस प्रकारकी दूसरी वस्तुएँ विभाज्य नहीं हैं[१३१]। ऐसी वस्तुओंका भी, जैसे कुआँ भाग नहीं करना चाहिए[१३२]। मवेशियोंका पूरा पूरा भाग करना चाहिए न कि टुकड़ों या हिस्सोंमें[१३३]। भाग करनेसे पूर्व

---

१२३. त्रैव० अध्याय १२ श्लो० ६।

१२४. इन्द्र० ११—१२।

१२५. अर्ह० १७।

१२६. „ १८=१९।

१२७. भद्र० १०७; अर्ह० ११९।

१२८. अर्ह० १४।

१२९. „ १२९।

१३० भद्र० १११; अर्ह० १६।

१३१. भद्र० ११२।

१३२. „ ११२; इन्द्र० २२।

१३३. „ ११२।

छोटे भाइयोंका विवाह कर देना उचित है या उनके विवाह निमित्त धनका प्रबन्ध करके विभाग करना चाहिए[१३४]। यदि एक या अधिक छोटी बहिनें हों तो प्रत्येक भाईको अपने भागका चतुर्थांश उनके विवाहके लिए अलग निकाल देना चाहिए[१३५] वर्धमान नीति और अर्हन्नीतिमें यह नियम है। भद्रबाहु संहितामें भी ऐसा ही नियम है परन्तु उसमें केवल सहोदर बहिनोंका उल्लेख है[१३६]। यदि किसी मनुष्यने कौटुम्बिक स्थावर सम्पत्तिको जो पिताके समयमें जाती रही हो पुनः प्राप्त कर लिया हो तो उसको अपने साधारण भागसे अधिक चतुर्थ भाग और मिलना चाहिए[१३७]। परन्तु ऐसी दशामें वह समस्त जंगम सम्पत्तिका स्वामी होगा[१३८]। किसी भागाधिकारीके गहने कपड़े और ऐसी ही दूसरी वस्तुएँ बाँटी नहीं जायेंगी[१३९]। भाग इस प्रकारसे करना चाहिए कि किसी अधिकारीको असन्तोष न हो[१४०]। यदि कोई भाई संसार त्याग करके साधु हो जाय तो उसका भाग उसकी स्त्रीको मिलेगा[१४१]।

जब कोई मनुष्य संसार त्यागना चाहे तो उसे सबसे प्रथम तीर्थंकर देवकी पूजा करनी उचित है। पुनः प्रतिष्ठित पुरुषोंके सामने अपनी सर्व सम्पत्ति अपने पुत्रको दे देनी चाहिए। या वह अपनी सम्पत्तिके तीन बराबर भाग कर सकता है जिनमेंसे एक भाग धार्मिक कार्य तथा दानादिकके लिए दूसरा परिजनोंके निर्वाहके लिए निश्चित करके तीसरा भाग सब पुत्रोंमें बराबर बराबर बाँट दे[१४२]। उसको यह भी उचित है कि अपने बड़े पुत्रको छोटे पुत्रोंका संरक्षक नियुक्त कर दे[१४३]।

●

---

१३४. वर्ध० ७; अर्ह० २०।
१३५. ,, ९; ,, २० २५।
१३६. भद्र० १९।
१३७. इन्द्र० २०; यह नियम मिताक्षरोंमें पाया जाता है।
१३८. वर्ध० ३७—३८; अर्ह० १३४—१३६।
१३९. इन्द्र० २१।
१४०. ,, ३९; अर्ह० १४।
१४१. अर्ह० ९०; भद्र० ८४; वर्ध० ४८।
१४२. त्रैव० अध्याय १२ श्लोक १३—१९।
१४३. ,, ,, १२ ,, १६—१८।

चतुर्थ परिच्छेद

दाय

जैन-लॉ के अनुसार दायादका क्रम निम्न प्रकार है—

१. विधवा।

२. पुत्र।

३. भ्राता।

४. भतीजा।

५. सात पीढ़ियोंमें सबसे निकट सपिण्ड[1]।

६. पुत्री।

७. पुत्रीका पुत्र।

८. निकटवर्ती बन्धु।

९. निकटवर्ती गोत्रज (१४ पीढ़ियों तकका)।

१०. ज्ञात्या।

११. राजा।

यह क्रम इन्द्रनन्दि जिन संहितामें दिया गया है (देखो श्लो० ३५-३८)। वर्धमान नीतिमें भी यही क्रम कुछ संकोचसे दिया है (देखो श्लो० ११-१२)। इन्द्रनन्दि जिन संहितामें बन्धु गोत्रज ज्ञात्या* और राजाको लौकिक रिवाजके अनुसार दायाद माना है (देखो श्लोक ३७-३८)। इसी पुस्तकके श्लोक १७-१८ में भी दायादका क्रम थोड़ेसे हेर फेर और संक्षेपसे बताया है। वह इस प्रकार है—१—सबसे बड़ी विधवा, २—पुत्र, ३—सवर्णा मातासे उत्पन्न भतीजा, ४—दोहिता, ५—गोत्रज, ६—मृतककी जातिका कोई छोटा बालक[2] (जिसे उसके पुत्रकी विधवा दत्तक लेवे)। अर्हन्नीति इस क्रमसे पूर्णतया सहमत है (देखो

---

१. सपिण्डका अर्थ सात पीढ़ियों तकके सम्बन्धीसे है।

* ज्ञात्या (जातवाले) का भाव अनुमानतः ऐसे पुरुषका भी हो सकता है जो माता द्वारा सम्बन्ध रखता हो। कारण कि प्रारम्भमें ज्ञातिका अर्थ माताके पक्षका था जैसा कि कुलका अर्थ पिताके कुटुम्बका था।

२. इसका शब्दार्थ भाव ७ वर्षकी आयुके पतिके छोटे भाईका है। ऐसा ही भाव अर्हन्नीतिमें मिलता है देखो अर्हन्नीति श्लोक ५६ (जहां दत्तकका सम्बन्ध है)।

श्लोक ७४-७५)। उसका क्रम इस प्रकार है—प्रथम विधवा, पुनः पुत्र, पुनः भतीजा, पुनः सपिण्ड, पुनः दोहिता, पुनः बन्धुका पुत्र, फिर गोत्रज, इन सबके अभावमें ज्ञात्या, और सबके अन्तमें राजा दायाद होता है।

दायादोंमें स्त्रीका स्थान पुत्रसे पहिले है[3]। स्त्रीकी सम्पत्तिका, जो स्त्रीधन न हो, प्रथम दायाद उसका पति फिर पुत्र[4] होता है। पुत्रके पश्चात् उसके पतिसे भाई भतीजे (स्वयं उसके नहीं) क्रमसे दायाद होते हैं[5]। निकटवर्ती दायादके होते दूरवर्तीको अधिकार नहीं है; अतएव भाईका सद्भाव भतीजोंको दायभागसे वंचित कर देता है[6]। इसी नीतिसे मृतकका पिता भाईसे पहिले दायका अधिकारी होगा, जैसे हिन्दू-लॉ में भी बताया है। पुत्र शब्द में कानूनी परिभाषाके अनुसार पौत्र और अनुमानतः परपौत्र भी अन्तर्गत है[7], जैसा हिन्दू-लॉ में भी है (देखो सुन्दरजी दामजी ब० दाहीबाई २९ बम्बई ३१६)।

यदि पुत्र अपने पिताके शरीक है और सम्पत्ति बाबाकी है तो उसमें उसका अधिकार है। विभागके पश्चात् विभाजित पिताकी सम्पत्तिका माताके होते हुए वह स्वामी नहीं हो सकता। क्योंकि उसकी माता ही उसकी अधिकारिणी होगी। यदि माता पिता दोनों मर जावें तो औरस वा दत्तक जैसा पुत्र हो वही दायाधिकारी होगा[8]।

किसी मनुष्यके बिना पुत्रके मर जाने पर उसकी विधवा उसकी सम्पत्तिकी सम्पूर्ण अधिकारिणी होगी[9]। चाहे सम्पत्ति विभाजित हो चाहे अविभाजित

---

३. भद्र० ११०, अर्ह० ११२।

४. अर्ह० ११५–११७, भद्र० ९७।

५. ,, ११५–११७, भद्र० ९७, और देखो अर्ह० ५५ जहाँ विधवाके भाईके पुत्रको गोद लेनेका भावार्थ पतिके भतीजेका है।

६. इन्द्र० ३६।

७. अर्ह० ९७, इन्द्र० २५।

८. भद्र० ३०।

९. भद्र० ९५, अर्ह० ११५ व १२५, तथा निम्नलिखित नजीरें—

क—मदनजी देवचन्द ब० त्रिभुवन वीरचन्द १२ इ० के० ८९२ = बम्बई लॉ रिपोर्टर १३ पृ० ११२१।

ख—मदनजी ब० त्रिभुवन ३६ बम्बई ३९६।

ग—शिम्भूनाथ ब० ज्ञानचन्द १६ इला० ३७९, परन्तु इस मुकदमेमें अपने पतिकी सम्पत्तिकी वह पूर्ण स्वामिनी करार दी गई थी, न कि बाबाकी

हो (देखो इन्द्रनन्दि जिन संहिता श्लोक १५)। पतिके भागकी पुत्रकी उपस्थितिमें भी वह पूर्ण स्वामिनी होती है (देखो अर्हन्नीति ५४)। यदि श्वसुर पहिले मर जाय और पतिका पीछे कालान्त हो तो वह अपने पतिकी सम्पूर्ण सम्पत्तिकी अधिकारिणी होगी[१०]। यदि वह पुत्रीके प्रेमवश पुत्रको गोद न ले और पुत्रीको अपनी दायाद नियुक्त करे तो उसके मरने पर उसकी सम्पत्तिकी अधिकारिणी उसकी पुत्री होगी, न कि उस (विधवा) के पति के कुटुम्बीजन। और उस पुत्रीकी मृत्युके पश्चात् भी वह सम्पत्ति उसके कुटुम्बी-

---

सम्पत्तिकी। इस मुकदमेका उल्लेख ९६ इ० के० पृ० ६३९ = २४ इ० ला० ज० पृ० ७५१ पर आया है।

घ—घीसनमल ब० हर्षचन्द (सन् १८८१) सेलेक्ट केसेज़ ४३ (अवध)।

ङ—बिहारीलाल ब० सुखवासीलाल (सन् १८६५ का अप्रकाशित फैसला) उल्लिखित सिलेक्ट केसेज़ अवध पृ० ३४ व ६ एन० डबल्यु० पी० हाईकोर्ट रिपोर्ट ३९२–३९८ इसमें यह निर्णय हुआ है कि विधवाको पतिकी अविभाजित मौरूसी (बाबाकी) सम्पत्तिके, पतिके भाइयोंके विरोधमें भी बेचनेका अधिकार है।

च—हूलन राय ब० भवानी (सन् १८६४ अप्रकाशित) से० के० अवध पृ० ३४ में इसका उल्लेख है। इसमें करार दिया गया है कि पुराने रिवाज और बिरादरीके व्यवहारके अनुसार विधवाका मौरूसी अविभाजित स्थावर धन पर अपने पतिकी जङ्गम सम्पत्तिके अनुसार ही पतिके समान पूर्ण अधिकार होता है।

छ—शिवसिंह राय ब० मु० दाखो ६ एन० डबल्यु० पी० हा० रि० ३८२ और अपीलका फैसला १ इला० पु० ६८८ प्री० कौं० जिसमें सम्बन्ध पतिकी निजी सम्पत्तिका है।

ज—हरनाभ राय ब० मण्डलदास २७ कल० ३७९। इसमें पतिकी निजी सम्पत्तिका सम्बन्ध है। परन्तु अदालतने पतिकी निजी सम्पत्ति और मौरूसी जायदादमें भेद मानना अस्वीकार किया।

झ—सोमचन्द सा० ब० मोतीलाल सा० इन्दौर हाईकोर्ट इब्तदाई मु० नं० ६ सन् १९१४ जो मि० जुगमन्दरलाल जैनीके जैन-लॉ में छपा है।

ञ—मौजीलाल ब० गोरी बहू, अप्रकाशित, उल्लिखित ७८ इण्डि० के० ४६१–४६२, किन्तु इसमें बेवाको पतिकी निजी सम्पत्तिकी पूर्ण स्वामिनी माना है।

१०. भद्र० ६५।

जनोंको नहीं पहुँचेगी किन्तु उसके पुत्रको मिलेगी, यदि पुत्र न हो तो उसके पतिको[११]।

इसका कारण यह है कि पुत्री भी पूर्ण अधिकारिणी ही होती है; भावार्थ जब वह मरती है तब उत्तराधिकार उससे प्रारम्भ होता है और सम्पत्ति उसके कुटुम्बमें रहती है, अर्थात् जिस कुटुम्बसे वह ब्याही है, पुनः उसके माता पिताके कुटुम्बियोंको नहीं लौटती[१२]।

जमाई, भाञ्जा और सास जैन-लॉ में उत्तराधिकारी नहीं है[१३]। व्यभिचारिणी विधवाका कोई अधिकार दायका नहीं होता केवल गुजारा पा सकती है[१४]। जैन-लॉ में लड़केकी बहू भी दायाद नहीं है[१५]।

जिस व्यक्तिके और कोई दायाद न हो; केवल एक पुत्री छोड़कर मरा हो तो अपने पिताकी सम्पत्तिकी वह पूर्ण स्वामिनी होगी[१६]। उसके मरने पर उसके अधिकारी, उसके पुत्रादि, उस सम्पत्तिके अधिकारी होंगे[१७]। यदि किसी मनुष्यके कोई निकट अधिकारी नहीं है केवल दोहिता हो तो उसकी पूर्ण सम्पत्तिका अधिकारी दोहिता होगा, क्योंकि नाना और दोहितेमें शारीरिक सम्बन्ध है[१८]। माताका स्त्री-धन पुत्रीको मिलता है चाहे विवाहिता हो[१९] वा अविवाहिता[२०]। इस विषयमें भद्रबाहुसंहिता और अर्हन्नीतिमें कोई मतभेद नहीं माना जा सकता है, क्योंकि अर्हन्नीतिकी नियत अविवाहित पुत्रोंको वंचित रखनेकी नहीं हो सकती है जबकि अविवाहित पुत्रीको विवाहित पुत्रीके मुकाबलेमें सब जगह प्रथम स्थान दिया गया है। अविवाहित पुत्रीका स्त्री-धन उसकी मृत्यु होने पर

---

११. भद्र० ९५--९७, अर्ह० ११५--११७।

१२. भद्र० ९७, अर्ह० ११७, परन्तु देखो छोटेलाल ब० छन्नूलाल, ४ कल० ७४४ प्री० कौं० जिसमें हिन्दू-लॉ के अनुसार दूसरी भाँतिका निर्णय हुआ।

१३. अर्ह० ११८।

१४. ,, ७६।

१५. वर्ध० ३५, अर्ह० १०८, जनकूरी ब० बुधमल ५७, इण्डि के० २५२।

१६. भद्र० २४, अर्ह० ३२।

१७. ,, २४, ,, ३२।

१८. अर्ह० ३३--३४, भद्र० २७--२८।

१९. ,, ३३, भद्र० २७।

२०. भद्र० २७।

भाईको मिलता है[२१]। विवाहिता पुत्रियाँ अपनी अपनी माताओंका स्त्री-धन पाती हैं[२२]। यदि कोई पुत्री जीवित न हो तो उसकी पुत्री और उसके अभावमें मृतक स्त्रीका पुत्र अधिकारी होगा[२३]। विवाहिता पुत्रीके स्त्री-धन का स्वामी उसके पुत्रके अभावमें उसका पति होता है[२४]। स्त्री-धनके अतिरिक्त विधवाकी अन्य सम्पत्तिका अधिकारी उसका पुत्र होगा[२५]। यदि एकसे अधिक विधवाएँ हों तो उन सबकी सम्पत्तिका अधिकारी (उनके पतिका) पुत्र होगा[२६]। यह पूर्व कथन किया जा चुका है कि यदि विधवा अपनी प्रिय पुत्रीके स्नेहवश दत्तक न ले तो उसकी सम्पत्तिकी अधिकारिणी वह पुत्री होगी न कि उसके पतिके भाई भतीजे[२७]। यह अधिकार वसीयतके रूपमें है जिसके बमूजिब विधवा अपनी सम्पत्तिकी अधिकारिणी किसी पुत्री-विशेषको बनाती है। क्योंकि विधवा जैन-नीतिके अनुसार पूर्ण स्वामिनी होती है और वह अपनी सम्पत्ति चाहे जिसको अपने जीवन-कालमें तथा मृत्यु-पश्चात्‌के लिए दे सकती है। जैन कानूनके अनुसार स्त्री-धनके अतिरिक्त स्त्रीकी सम्पत्ति उसके भाई भतीजों या उनके सम्बन्धियोंको नहीं मिलती है किन्तु उसके पतिके भाई भतीजोंको मिलती है[२८]। यह नियम भद्रबाहु संहिताके अध्ययन करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि जिसके अनुसार पुत्रीके दायाद नियुक्त किये जाने पर पतिके भाई भतीजे दायसे वञ्चित हो जाते हैं[२९]।

विभाजित भाईके मरने पर उसकी विधवा अथवा पुत्रके अभावमें उसकी सम्पत्ति उसके शेष भाइयोंमें बराबर बराबर बाँट ली जाएगी[३०]। परन्तु यदि पुत्र होगा तो वही अधिकारी होगा[३१]। यदि उसने कोई निकट-

---

२१. अर्हं० १२८।
२२. इन्द्र० १४।
२३. „ १५।
२४. भद्र० २९, वर्ध० १३, अर्ह० ३५।
२५. „ २१, „ १०, „ २८।
२६. „ ४०।
२७. „ ९६–९८, अर्ह० ११५-११७।
२८. अर्ह० ८१—८२।
२९. भद्र० ९६—९७।
३०. इन्द्र० ४०।
३१. „ ३५; वर्ध० ११; अर्ह० ७४।

सम्बन्धी नहीं छोड़ा है तो उसकी सम्पत्तिका अधिकार पूर्वोक्त क्रमानुसार होगा[३२]।

यदि किसी मनुष्यके पुत्र नहीं है तो जायदाद प्रथम उसकी विधवाको, पुनः मृतककी माताको (यदि जीवित हो) मिलेगी[३३]। भावार्थ यह है कि पुत्रके पश्चात् माता अधिकार—क्रमानुसार दूसरी उत्तराधिकारिणी है। अर्थात् विधवा और पुत्र दोनोंके अभावमें सम्पत्ति मृतककी माताको मिलेगी[३४]। यदि विधवा शीलवती है तो उसके पुत्र हो या न हो वह अपने पतिकी सम्पत्तिकी पूर्ण अधिकारिणी होगी[३५]। दायभागकी नीति जो किसी व्यक्तिकी मृत्यु पर लागू होती है वही मनुष्यके लापता, पागल और संसार-विरक्त हो जाने पर लागू होती है[३६]। जब किसी व्यक्तिका कुछ पता न चले तो उसकी सम्पत्तिकी व्यवस्था वर्तमान समयमें सरकारी कानून-शहादतके अनुकूल होगी, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जिसका सात वर्ष तक कुछ पता न लगे मृतक मान लिया जाता है। केवल असाध्य पागलपनेकी दशामें ही अधिकार का प्रश्न उत्पन्न हो सकता है, किन्तु पागलकी व्यवस्था अब सरकारी कानून ऐक्ट नं० ४ सन् १९१२ के अनुसार होगी और पागलके जीवनकालमें दाय अधिकार प्राप्त करनेका प्रश्न नहीं उठेगा।

दाय-सम्बन्धी सर्ववादविवाद विषय कानून या स्थानीय रिवाजके अनुसार (यदि कोई हो) न्यायालयों द्वारा निर्णय करा लेना चाहिए जिससे पुनः झगड़ा न होने पावे[३७]।

यदि किसी पुरुषके एकसे अधिक स्त्रियाँ हों तो सबसे बड़ी विधवा अधिकार पाती है और कुटुम्बका भरण-पोषण करती है[३८]। परन्तु यह नियम स्पष्ट नहीं है; अनुमानतः यह नियम राज्य एवं अन्य अविभाज्य सम्पत्ति सम्बन्धी प्रतीत होता है कि सब विधवाएँ अधिकारी हों और प्रबन्ध कमसे कम उस समय तक बड़ी विधवा करे जब तक कि वह सब एक दूसरेसे राजी रहें।

यदि किसीकी अनेक स्त्रियोंमेंसे किसीके पुत्र हो तो वह सबका अधिकारी

---

३२. इन्द्र० ४१।

३३. भद्र० ११०; अर्ह० ११२।

३४. ,, ,, ,, ,,।

३५. वर्ध० १४; अर्ह० ५४।

३६. अर्ह० ५३ व ९१।

३७. इन्द्र० ३७-३८।

३८. ,, १७।

होगा[३९]। अर्थात् वह अपनी माता अथवा सौतेली सब माताओंकी सम्पत्तिको जब जब वह मरेंगी पावेगा[४०]।

राजाका कर्तव्य

यदि किसी मनुष्यका उत्तराधिकारी ज्ञात न हो तो राजाको तीन वर्ष पर्यन्त उसकी सम्पत्ति सुरक्षित रखनी चाहिए, और यदि इस बीचमें कोई व्यक्ति उसको आकर न माँगे तो उसे स्वयं ले लेना चाहिए[४१]। किन्तु उस द्रव्यको धार्मिक कार्योंमें खर्च कर देना चाहिए[४२]। इन्द्रनन्दि जिन संहितामें यह नियम ब्राह्मणीय सम्पत्तिके सम्बन्धमें उल्लिखित है[४३]। क्योंकि ब्राह्मणकी सम्पत्तिको राजा ग्रहण नहीं कर सकता है[४४]। परन्तु वर्धमान नीतिमें यह नियम सर्व वर्णोंकी सम्पत्तिके सम्बन्धमें है कि राजाको ऐसा धन—धर्म कार्योंमें लगा देना उचित है[४४]। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणकी सम्पत्तिको उसकी विधवा वा अन्य दायादोंके अभावमें कोई ब्राह्मण ही ग्रहण कर सकेगा[४५]।

---

३९. भद्र० ४०; अर्ह० ९८।

४०. अर्ह० ९८।

४१. वर्ध० ५७; इन्द्र० ३९।

४२. अर्ह० ७४-७५; वर्ध० ११-१२।

४३. इन्द्र० ३९।

४४. वर्ध० १२; इन्द्र० ३९।

४५. इन्द्र० ४०।

पञ्चम परिच्छेद

स्त्री-धन

निम्नलिखित पाँच प्रकारकी सम्पत्ति स्त्री-धन होती है[1]—

१. अध्यग्नि—जो कुछ अग्नि और ब्राह्मणोंकी साक्षीमें लड़कीको दिया जाता है, अर्थात् वह आभूषण इत्यादि जो पुत्रीको उसके माता-पिता विवाह के समय देते हैं[2]।

२. अध्याहवनिक—(लाया हुआ) जो द्रव्य वधू अपने पिताके घरसे अपने पिता और भाइयों के सम्मुख लावे[3]।

३. प्रीतिदान—जो सम्पत्ति श्वसुर और सासु वधूको विवाह के समय देते हैं[4]।

४. औदयिक (सौदयिक)—जो सम्पत्ति विवाहके पश्चात् माता पिता या पतिसे मिले[5]।

५. अन्वाध्येय—जो वस्तुएँ विवाह-समय अपनी या पतिके कुटुम्बकी स्त्रियोंने दी हों[6]।

संक्षेपतः वधूको जो कुछ विवाह के समय मिलता है वह सब उसका स्त्री-धन है[7]।

और विवाहके पश्चात् सब कपड़े और गहने जो उसको उसके कुटुम्बीजन या श्वसुरके परिवारजन देते हैं वह सब स्त्री-धन है[8]। इसी भाँति गाड़ी और घोड़ेकी भाँतिके पदार्थ भी स्त्री-धन हैं[9]। जो कुछ गहने, कपड़े कोई

---

१. भद्र० ९०; वर्ध० ३९—४५।

२. ,, ८५; ,, ४०; अर्ह० १३८।

३. ,, ८६; ,, ४१; १३९।

४. ,, ८७; ,, ४२; १४०।

५. ,, ८८; ,, ४३; १४१।

६. ,, ८९; ,, ४४; ,, १४२।

७. वर्ध० ३९-४०; अर्ह० १३६-१३७; इन्द्र० ४६।

८. अर्ह० १३६-१३७।

९. इन्द्र० ४७।

स्त्री अपने लिए अपने विवाहके समय पाती है और सब जंगम सम्पत्ति जो पति उसको दे वह सब उसका स्त्री-धन है[१०]। और वह स्वयं ही उसकी स्वामिनी है[११]। किन्तु वह किसी स्थावर-सम्पत्तिकी स्वामिनी नहीं है जो उसे उसके पतिने दो हो[१२]। यदि पतिने कोई गहने उसके लिए बननेको दे दिये हों जिनके बननेके पहिले वह (पति) मृत्युको प्राप्त हो जाय तो वह भी उसका स्त्री-धन होंगे[१३]। क्योंकि पति यदि द्रव्य उसको दे देता और वह स्त्री स्वयं गहने बननेको देती तो वही उसकी स्वामिनी होती न कि पति।

स्त्री-धन पैत्रिक सम्पत्तिकी भाँति विभाग योग्य नहीं है[१४]। पिताके किसी कुटुम्बीको कोई ऐसी वस्तु पुनः ग्रहण नहीं करनी चाहिए जो उन्होंने विवाहिता पुत्रीको दे दी हो या जो उसके श्वसुरके लोगोंसे उसको मिली हो[१५]। अकालके समय अथवा धार्मिक आवश्यकताओंके अतिरिक्त और समयपर उसके स्त्री-धनको कोई अर्थात् पति भी नहीं ले सकता[१६]। धार्मिक कार्योंमें दिनचर्याकी पूजा इत्यादि सम्मिलित नहीं है। उससे केवल उस आवश्यकताका अर्थ है जो जाति वा धर्मपर आई हुई आपत्तिके टालनेके निमित्त हो। पत्नीका धन स्त्री-धन पति उस समय भी ले सकता है जब वह कारागारमें हो[१७]। परन्तु वह स्त्री-धनको उसी दशामें ले सकता है जब उसके पास कोई और सम्पत्ति न हो[१८]। तो भी यदि पति स्त्री-धनको लेनेपर बाध्य हो जावे और उसको वापिस न दे सके तो वह उसे पुनः देनेके लिए बाध्य नहीं है[१९]।

स्त्रीको अपने स्त्री-धनके व्यय करनेका अपने जीवनमें पूर्ण अधिकार है[२०]। वह उसको अपने भाई-भतीजोंको भी दे सकती है[२१]। ऐसा दान

१०. वर्ध० ५४; इन्द्र० ३।
११. अर्ह० १४३-१४४; वर्ध० ४५।
१२. इन्द्र० ३।
१३. अर्ह० १४४।
१४. अर्ह १५३–१५४; इन्द्र० ४८।
१५. अर्ह० ८१।
१६. भद्र० ९०; वर्ध० ४५-४६।
१७. अर्ह० १४५।
१८. ,, १४५।
१९. वर्ध० ४६, अर्ह० १४५।
२०. इन्द्र० ४९–५१।

साक्षी द्वारा होना चाहिए[२१]। परन्तु यह नियम आवश्यकीय नहीं है। यदि इस विषयपर कोई झगड़ा उठे तो उसका निर्णय पंचायत या न्यायालय द्वारा होगा[२२]।

स्त्रीके मरणके पश्चात् उसका स्त्री-धन उसके निकट सम्बन्धियों अर्थात् पुत्री, दोहिता और दोहित्रियोंके अभावमें उसके पुत्रको मिलेगा और उसकी बहिनकी पुत्रीको भी मिल सकता है[२३]। यदि स्त्री संतान-हीन मर जाय तो उसका धन पतिको मिलेगा[२४]। विवाहिता पुत्रियां अपनी अपनी माताओंके स्त्री-धनको पाती हैं[२५]। विवाहिता स्त्रीका स्त्री-धन उसके पिता तथा पिता के कुटुम्बी जनोंको नहीं लेना चाहिए[२६]।

---

२१. इन्द्र० ४९-५०।
२२. ,, ५०-५१।
२३. इन्द्र० १५ व ४६।
२४. भद्र० २६, वर्ध०, १३।
२५. इन्द्र० १४।
२६. अर्ह० ८१।

षष्ठ परिच्छेद

भरण-पोषण (गुजारा)

निम्नाङ्कित मनुष्य भरण-पोषण पानेके अधिकारी हैं—

१. जीवित तथा मृतक बालक[१], अर्थात् जीवित बालक और मृतक पुत्रोंकी सन्तान तथा विधवाएँ, यदि कोई हों।

२. वह मनुष्य जो भागाधिकार पानेके अयोग्य हो[२]।

३. सबसे बड़े पुत्रके सम्पत्ति पानेकी अवस्थामें अन्य परिवार[३]।

४. अविवाहित पुत्रियाँ और बहिनें[४]।

५. विभाग होनेके पश्चात् उत्पन्न हुए भाई जब कि पिताकी सम्पत्ति पर्याप्त न हो[५]। परन्तु ऐसी दशामें केवल विवाह करा देने तकका भार बड़े भाइयों पर होता है। विवाहमें स्वभावत: कुमार अवस्थाका विद्याध्ययन और भरण-पोषण भी शामिल समझना चाहिए।

६. विधवा बहुएँ उस अवस्थामें जब वह सदाचारिणी और शीलवती हों[६]।

७. ऐसी विधवा माता जिसको व्यभिचारके कारण दायभाग नहीं मिला हो[७]।

८. तीनों उच्च वर्णोंके पुरुषोंसे जो शूद्र स्त्रीके पुत्र हों[८]।

९. माता[९] और पिता जब वह दायभागके अयोग्य हों[९]।

---

१. अर्हं० ६।

२. ,, ६, भद्र० ७०, इन्द्र० १३-१४, ४३, वर्ध० ५३।

३. ,, २४, ,, १००।

४. भद्र० १६, इन्द्र० २६, वर्ध० ६।

५. ,, १०६।

६. अर्हं० ७७।

७. अर्हं० ७६।

८. ,, ६६, वर्ध० ४।

९. भद्र० ६५ व ७७, और वह प्रमाण जो दायभागसे वंचित रहनेके सिलसिलेमें दर्ज है।

१०. दासीपुत्र[१०]।

सम्पत्ति पानेवालेका कर्तव्य है कि वह उन मनुष्योंका भरण-पोषण करे जो गुजारा पानेका अधिकारी हों[११]। सामान्यतः सब बच्चे चाहे वह उत्पन्न हो गये हों अथवा गर्भमें हों और सब मनुष्य जो कुटुम्बसे सम्बन्ध रखते हैं, कौटुम्बिक सम्पत्तिमेंसे भरण-पोषण पानेके अधिकारी हैं[१२]। और परिवार की पुत्रियोंके विवाह भी उसी सम्पत्तिसे होने चाहिये[१३]। वयःप्राप्त पुत्र भरण-पोषणके अधिकारी नहीं हैं चाहे वह अस्वस्थ ही हों[१४]। जो युवतियाँ विवाह द्वारा अपने परिवारमें आ जावें (अर्थात् बहुएँ) वह सब भरण-पोषण पानेका अधिकार रखती हैं, चाहे उसके सन्तान हो अथवा न हो; परन्तु उसी अवस्थामें कि उनके पति सम्मिलित रहते हों[१५]। यदि उनमेंसे कोई व्यभिचारिणी है तो घरसे निकाल दी जाएगी[१६]। किन्तु यदि विधवा माता व्यभिचार सेवन करती है तो भी उसके पतिके भाई-भतीजे और पुत्र पर उसके भरण-पोषणका दायित्व होगा; परन्तु वह दायकी भागी न होगी[१७]।

माताके गुजारेमें वह व्यय भी सम्मिलित होगा जो उसे धार्मिक क्रियाओंके लिए आवश्यक हो[१८]। भावार्थ तीर्थयात्रा आदि धार्मिक आवश्यकताओंके लिए पुत्र तथा विधवा पुत्रवधुसे, जिसके हस्तगत सम्पत्ति हो, विधवा माता खर्चा पानेकी अधिकारिणी है।

पुत्रियोंके विवाह-व्ययकी सीमाके सम्बन्धमें कुछ मतभेद है जो अनुमानतः इस कारणसे है कि कोई नित्य और अविचल नियम इस विषयमें नियुक्त नहीं हो सकता जिसका व्यवहार प्रत्येक अवस्थामें हो सके। भद्रबाहु संहिताके अनुसार सब भाइयोंको अपने अपने भागका चतुर्थांश सहोदर बहिनोंकी शादीके लिए अलग निकाल देना चाहिए[१९]। वर्धमान नीति तथा अर्हन्नीति दोनोंमें यही

---

१०. इन्द्र० ३५; अर्ह० ४३; भद्र० ३४।
११. ,, १३-१४; भद्र० ७४ व ६८।
१२. अर्ह० १०।
१३. इन्द्र० २६; अर्ह० २०; भद्र० २६ व १०६; वर्ध० ६।
१४. प्रेमचन्द्र पिपारा ब० दुलासचन्द पिपारा १२ विक्ली रिपोर्टर ४६४।
१५. अर्ह० ७७।
१६. ,, ७७।
१७. ,, ७६।
१८. भद्र० ७७।
१९. ,, १६।

नियम मिलता है[२०]। परन्तु इन्द्रनंदि जिन संहिताके अनुसार यदि दो भाई और एक अविवाहिता बहिन हों तो दायसम्पत्तिके तीन समान भाग करने चाहिए[२१]।

यदि यह भाग समान है तो पुत्रीको सर्व सम्पत्तिका एक तिहाई मिलेगा। परन्तु इसका आशय यह मालूम पड़ता है कि विवाहके व्ययका अनुमान सामान्यतः इसके ही सीमान्तर होगा। दासीपुत्रोंके भरण-पोषणकी सीमा उनके पिताकी सम्पत्ति पर है जबतक वह जीवित है[२२] और पिताके पश्चात् वह असली पुत्रोंसे अर्धभाग तक पा सकता है, यदि पिताने उसके गुजारेका कोई अन्य प्रबन्ध न कर दिया हो[२३]।

यदि किसी विधवाने कोई पुत्र गोद लेकर उसीको अधिकार दे दिया हो तो वह गुजारा पाने तथा दत्तकको कुमारावस्थामें उसकी संरक्षिका होनेकी अधिकारिणी होगी[२४]। पुत्र भी मातासे गुजारेका अधिकारी है[२५] यह अनुमानतः तभी होगा जब कि पिताकी सम्पत्ति माताने पाई हो। तो भी सद्व्यवहारके अनुसार माता अपने बच्चोंका भरण पोषण करनेपर बाध्य ही है, यदि वह ऐसा करनेकी सामर्थ्य रखती हो।

---

२०. वर्ध० ६; अर्ह० २५।

२१. इन्द्र० २६।

२२. इन्द्र० ३४।

२३. ,, ३४-३५।

२४. शिवसिंह राय ब० दाखो ६ एन० डब्ल्यु० पी० हाईकोर्ट रिपोर्ट ३८२।

२५. अर्ह० १२६।

सप्तम परिच्छेद

संरक्षता

जो पुत्र पुत्रियाँ वयः प्राप्त नहीं हैं उनकी संरक्षकताके अधिकारी नीचे लिखे मनुष्य क्रमानुसार होंगे[1]—

१. पिता। २. पितामह। ३. भाई। ४. चाचा। ५. पिताका गोत्रज। ६. धर्मगुरु। ७. नाना। ८. मामा।

यह क्रम विवाहके सम्बन्धमें है[1]। बड़े भाइयोंके साथ छोटे भाइयोंको रहनेकी आज्ञा है[2] और बड़े भाईका कर्तव्य है कि पिताके समान उनके साथ व्यवहार करे[3]। विभाग होनेके पश्चात् भी यदि कोई भाई उत्पन्न हो जाय तो बड़े भाइयों को उसका विवाह करना चाहिए[4]। छोटी बहिनोंकी संरक्षणता, उनके विवाह होने तक, पिताके अभावमें, बड़े भाइयोंको प्राप्त होती है[5]।

यदि किसी विवाहिता पुत्रीके पतिके कुटुम्बमें उसकी रक्षा और उसकी सम्पत्तिकी देखभाल करनेवाला कोई न हो तो उसके पिताके कुटुम्बका कोई आदमी संरक्षक होगा[6]। यदि माता जीवित है और कोई छोटी लड़की या लड़का उसके साथ और अपने अन्य भाइयोंसे पृथक् रहता हो या और भाई न हों तो उसकी संरक्षकता उसकी माताको प्राप्त होगी[7]।

यदि उन्मत्तता, असाध्य रोग, आसेव या इसी प्रकारके किसी अन्य कारणवश कोई विधवा अपनी सम्पत्तिको रक्षा करनेके अयोग्य हो तो उसकी रक्षा उसके पतिका भाई, भतीजा या गोत्रज और उनके अभावमें पड़ोसी करेगा[8]।

---

१. त्रैव० अध्याय ११ श्लोक ८२।
२. भद्र० ५, अर्ह० २४।
३. ,, १०, ,, २४।
४. ,, १०३।
५. वर्ध० ९; भद्र० १९; इन्द्र० ८, अर्ह० २०।
६. अर्ह० ८२।
७. वर्ध० १८, अर्ह० ८३–८४।
८. अर्ह० ७८–८०।

परन्तु अब असमर्थ और रक्षकका विषय सरकारी कानून गार्डियन्ज एण्ड वार्ड्ज ऐक्ट के अनुसार निर्णीय होगा। पागलोंका कानून असमर्थ और अयोग्य मनुष्यों-के कोर्टका कानून तथा इसी प्रकारके विषय सम्बन्धी कानून भी अपने अपने मौके पर लागू होंगे।

जैन-लॉ में इस अधिकारको स्वीकार किया गया है कि कोई मनुष्य अपने जीवन-कालमें वसीयत द्वारा अपनी सम्पत्तिका कोई प्रबन्धक नियत कर दे जो उसकी विधवा एवं उसकी सम्पत्तिकी रक्षा करे[९]। ऐसा नियुक्ति-पत्र साक्षियों द्वारा पंचों या सरकारसे रजिस्टरी कराना चाहिए[१०]। यदि सिपुर्ददार सम्पत्तिके स्वामीकी मृत्युके पश्चात् विश्वासघाती हो जावे तो विधवाको अधिकार होगा कि अदालतद्वारा उसे पृथक् करा दे और उसके स्थान पर अन्य पुरुषको नियुक्त करा दे[११]। वर्धमान नीतिके अनुसार वह स्वयं भी उस प्रबन्धककी जगह अपनी सम्पत्तिका प्रबन्ध कर सकती है[१२]। प्रबन्धकका कर्तव्य है कि वह सम्पत्तिकी देखभाल पूर्ण सावधानीसे करे ताकि सम्पत्ति सुरक्षित रहे और परिवार-जनोंका निर्वाह भलीभांति हो सके[१३]। यदि विधवाने प्रबन्ध-कार्यका दायित्व स्वयं अपने ऊपर ले लिया है तो उसको (नियुक्ति-पत्र या वसीयतके अनुसार) उस सम्पत्तिको दान करने, गिरवी रखने तथा बेच देनेका आवश्यकता-नुसार अधिकार होगा[१४]। यदि कोई औरस या दत्तक पुत्र हो तो वह उसके इस प्रकार सम्पत्तिको व्यय करनेमें बाधक नहीं हो सकता[१५]; क्योंकि विधवाको वह सब अधिकार हैं जो सिपुर्ददारको होते, तथा उसको धार्मिक कार्यों अथवा व्यापार सम्बन्धी आवश्यकताओंमें उस सम्पत्तिको दान कर देने, गिरवी रखने और बेचनेका अधिकार प्राप्त है[१६]।

●

९. अर्ह० ४६–४८; वर्ध० १६-१७ व २०-२१।
१०. ,, ४७; वर्ध० २०-२१।
११. ,, ४६–५०; भद्र० ७१-७२।
१२. वर्ध० २२-२३; भद्र० ७३-७४ का आशय भी ऐसा ही जान पड़ता है।
१३. अर्ह० ५१।
१४. ,, ५२।
१५. ,, ५२।
१६. वर्ध० २४।

अष्टम-परिच्छेद

रिवाज

रिवाज कई प्रकारके होते हैं—साधारण व विशेष, अर्थात् जातीय, कौटुम्बिक और स्थानीय। प्रत्येक मुकदमेमें इनको गवाहोंसे साबित करना पड़ता है। कौटुम्बिक रिवाजके साबित करनेके लिए बड़ी प्रमाणित साक्षीकी आवश्यकता होती है। आजकल कानूनके अनुसार न्यायालयोंमें जैन-जातिके मनुष्योंके झगड़े रिवाज विशेषके अनुसार निर्णय किये जाते हैं[1]। रिवाज-विशेषके अभावमें हिन्दू-कानून लागू होता है[2]। हिन्दू-कानूनका वह भाग जो द्विजोंके लिए है जैनियोंके लिए लागू माना गया है[3]। बम्बई प्रान्तमें एक मुकदमेमें एक मृतक पुरुषकी बरसीके सम्बन्धमें भी हिन्दू कानून लागू किया गया था यद्यपि बरसीका जैन जातिमें रिवाज नहीं है और वह जैन सिद्धान्तके नितान्त बाहर व विरुद्ध है। परन्तु उस मुकदमेमें विधवा एक ओर और दूसरी ओर मृतकका अल्पवयस्क पुत्र था और सम्पत्ति प्रबन्धकके प्रबन्धमें थी और सब पक्षोंने स्वीकार कर लिया था कि उनके मुकदमेसे हिन्दू-कानून लागू होता है[4]। धर्म-परिवर्तनका अर्थात् किसी जैनीके हिन्दू-धर्म स्वीकार कर लेनेसे उसके स्वत्वों पर कोई असर नहीं पड़ता[5]। एक मुकदमेमें, जो तञ्जोरमें हुआ था, जहाँ एक जैन विधवाने

१. शिवसिंह राय ब० मु० दाखो १ इला० ६८८ प्री० कौं०; मानकचन्द गुलेचा ब० जगत्सेटानी प्राणकुमारी बीबी १७ कल० ५१८।

२. अम्बाबाई ब० गोविन्द २३ बम्बई २५७; छोटेलाल ब० छन्नूलाल ४ कल० ७४४ प्री० कौं० और देखो अन्य मुकदमे जिनका पहिले उल्लेख किया जा चुका है।

३. अम्बाबाई ब० गोविन्द २३ बम्बई २५७।

४. सुन्दरजी दामजी ब० दाही बाई २९ बम्बई ३१६ = ६ बम्बई लॉ-रिपोर्टर १०५२।

५. मानकचन्द गुलेचा ब० ज० से० प्राणकुमारी १७ कल० ५१८।

जिनके कुटुम्बीजन किसी समयमें हिन्दू थे अपने पतिकी आज्ञाके बिना पुत्र गोद ले लिया था, वह निर्णय हुआ था कि हिन्दू-कानून लागू होता है और दत्तक नीति विरुद्ध है[६]। यह मुकदमा एक पहिले मुकदमेसे इस कारण असहधर्मी करार दिया गया था कि उसमें धर्म-परिवर्तन मुकदमा चलनेसे सैकड़ों वर्ष पूर्व हो चुका था और अनुमानतः उससे भी पहिले हो चुका था जबकि हिन्दू-लॉ का वह भाग जो उस स्थानपर मुकदमेके समय चालू था, रचा गया होगा[७]। बंगालके एक पुराने मुकदमेमें हिन्दू-कानूनका स्थानीय नियम जैनियोंको लागू किया गया था, अर्थात् हिन्दू-कानूनकी वह शाखा जिसका उस स्थानमें रिवाज था जहाँ सम्पत्ति वाके थी जैनियोंको लागू की गई थी[८]। परन्तु इसके पश्चात् एक और मुकदमेमें जिसका जुडीशल कमिश्नर नागपुरने निर्णय किया, इस फैसलेका अर्थ यह समझा गया कि स्थानीय नियम उसी अवस्थामें लागू होगा जबकि किसी दूसरे नियम या कानूनका होना प्रमाणित न हो[९]।

अब यह नियम सिद्ध हो गया है कि एक स्थानका रिवाज दूसरे स्थानके रिवाजको प्रमाणित करनेके लिए साबित किया जा सकता है और प्रासंगिक विषय है[१०]। यह भी माना जाएगा कि हिन्दुओंकी भाँति जैनी लोग भी एक स्थानसे दूसरे स्थानको अपने रीति-रिवाज साथ ले जाते हैं, जब तक कि यह न दिखाया जाय कि पुराने रिवाज छोड़कर स्थानीय रिवाज ग्रहण कर लिए गये हैं[११]।

रिवाज प्राचीन, निश्चित, व्यवहृत और उचित होने चाहिए। सदाचारके प्रतिकूल, सरकारी कानूनके विरुद्ध और सामाजिक नीति (Public Policy) के द्रोही रिवाज उचित नहीं समझे जायेंगे। गवाहोंकी निजी सम्पत्तिकी अपेक्षा

---

६. पेरिया अम्मानी ब० कृष्णास्वामी १६ मदरास १८२।

७. रिथुचरण लाल्ला ब० सूजनमल लाल्ला ९ मद० ज्युरिस्ट २१।

८. महावीर प्रसाद ब० मु० कुन्दन कुँअर ८ वीक्ली रिपोर्टर १७६; इसका प्री० कौं० का फैसला नं० २१ वीक्ली रिपोर्टर पृ० २१४ और उसके पश्चात्के पृष्ठों पर दिया है (दुर्गाप्रसाद ब० मु० कुन्दन कुँअर)।

९. जंकूरी ब० बुद्धमल ५७ इंडि० के० २५२।

१०. हरनाम प्रसाद ब० मडिलदास २७ कल० ३७९; अम्बाबाई ब० गोविन्द २३ बम्बई २५७।

११. जंकूरी ब० बुद्धमल ५७ इंडि० के० २५२; अम्बाबाई ब० गोविन्द २३ बम्बई २५७।

उदाहरणों और झगड़ेवाले मुकदमोंके फैसलोंका मूल्य रिवाजको साबित करनेके लिए अधिक है। ऐसा रिवाज जो न्यायालयोंमें बार-बार प्रमाणित हो चुका है कानूनका अंश बन जाता है और प्रत्येक मुकदमेमें उसके साबित करनेकी आवश्यकता नहीं रहती है[१२]।

१२. मु० सानो ब० मु० इन्द्राणी बहू ७८; इंडि० के० ४६१ नागपुर।

द्वितीय भाग

नवम परिच्छेद

त्रैवर्णिकाचार-ग्यारहवाँ अध्याय

अन्यगोत्रभवां कन्यामनातङ्कां सुलक्षणाम् ।
आयुष्मतींगुणाढ्यां च पितृदत्तां वरेद्वरः ॥ ३ ॥

जो अन्य गोत्रकी हो, रोगरहित हो, उत्तम लक्षणोंवाली हो, दीर्घ आयुवाली हो, उत्तम गुणोंसे भरी पुरी हो और अपने पिता द्वारा दी जावे, ऐसी कन्याके साथ विवाह करे ॥ ३ ॥

वरोऽपि गुणवान् श्रेष्ठो दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः ।
सुकुली तु सदाचारी गृह्यतेऽसौ सुरूपकः ॥ ४ ॥

वर भी गुणवान्, श्रेष्ठ, दीर्घ आयुवाला, निरोगी, उत्तम कुलका, सदाचारी और रूपवान् होना चाहिए ॥ ४ ॥

पादेऽपि मध्यमा यस्याः क्षिति न स्पृशति यदि ।
द्वौ पुरुषावतिक्रम्य सा तृतीये न गच्छति ॥ २० ॥

जिसके पैरकी बिचली उँगली जमीनपर न टिकती हो तो समझना चाहिए कि वह दो पुरुषों को छोड़कर तीसरेके पास नहीं जाएगी ॥ २० ॥

यस्यास्त्वानामिका ह्रस्वा तां विदुः कलहप्रियाम् ।
भूमिं न स्पृशते यस्याः खादते सा पतिद्वयम् ॥ २४ ॥

जिसके पैरकी अनामिका उँगली छोटी हो उसे कलहकारिणी समझो और उसकी वह उँगली यदि जमीनपर न टिकती हो तो समझो कि वह कन्या दो पतियोंको खायेगी ॥ २४ ॥

इत्थं लक्षणसंयुक्तां षडष्टराशिवर्जिताम् ।
वर्णविरुद्धासंत्यक्तां सुभगां कन्यकां वरेत् ॥ ३५ ॥

जो ऊपर कहे हुए शुभ लक्षणोंसे युक्त हो, पतिकी जन्म-राशिसे जिसकी जन्म-राशि छठवीं या आठवीं न पड़ती हो, और जिसका वर्ण पतिके वर्णसे विरुद्ध न हो, ऐसी सुभग कन्याके साथ विवाह करना चाहिए ॥ ३५ ॥

रूपवती स्वजातीया स्वतो लघ्वन्यगोत्रजा ।
भोक्तुं भोजयितुं योग्या कन्या बहुकुटुम्बिनी ॥ ३६ ॥

जो रूपवती हो, अपनी जातिकी हो, वरसे आयु और शरीरमें छोटी हो,

दूसरे गोत्रकी हो, और जिसके कुटुम्बमें बहुतसे स्त्री-पुरुष हों, ऐसी कन्या विवाह करने योग्य होती है ।। ३६ ।।

सुतां पितृष्वसुश्चैव निजमातुलकन्यकाम् ।
स्वसारं निजभार्यायाः परिणेता न पापभाक् ।। ३७ ।।

बूआकी लड़कीके साथ, मामाकी कन्याके साथ और सालीके साथ विवाह करनेवाला पातकी नहीं है ।। ३७ ।।

नोट—आजकल इस कायदे पर स्थानीय रिवाजके अनुसार अमल हो सकता है। इसलिए सोमदेवनीतिमें कहा है कि "देश-कालापेक्षो मातुलसम्बन्धः" अर्थात् मामाकी लड़कीसे विवाह देश और कालके रिवाजके मुताबिक ही होता है।

पुत्री मातृभगिन्याश्च स्वगोत्रजनिताऽपि वा ।
श्वश्रूष्वसा तथैतासां वरीता पातकी स्मृतः ।। ३८ ।।

अपनी मौसीकी लड़की, अपने गोतकी लड़की, अपनी सासकी बहनके साथ विवाह करनेवाला पातकी माना गया है ।। ३८ ।।

स्ववयसोऽधिकां वर्षैरुन्नतां वा शरीरतः ।
गुरुपुत्रीं वरेन्नैव मातृवत्परिकीर्तिता ।। ४० ।।

अपनेसे उमरमें बड़ी हो, अपने शरीरसे ऊँची हो तथा गुरुकी पुत्री हो तो इनके साथ विवाह न करें। क्योंकि ये माताके समान मानी गई हैं ।। ४० ।।

वाग्दानं च प्रदानं च वरणं पाणिपीडनम् ।
सप्तपदीति पञ्चाङ्गो विवाहः परिकीर्तितः ।। ४१ ।।

वाग्दान, प्रदान, वरण, पाणिग्रहण और सप्तपदी ये विवाहके पाँच अंग कहे गए हैं ।। ४१ ।।

नोट—वाग्दान सगाईको कहते हैं, प्रदान जेवर और कपड़े वगैरहका वरकी तरफसे कन्याको भेंट करना होता है। वरण वर और कन्याके वंशका वर्णन है जो विवाहके समय होता है। पाणिग्रहण या पाणिपीड़न हाथ मिलानेको कहते हैं और सप्तपदी भाँवर है।

ब्राह्मो दैवस्तथा चार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाश्चाष्टमोऽधमः ।। ७० ।।

ब्राह्म विवाह, दैव विवाह, आर्ष विवाह और प्राजापत्य विवाह, ये चार धर्म्य विवाह हैं। और आसुर विवाह, गान्धर्व विवाह, राक्षस विवाह और पैशाच विवाह ये चार अधर्म्य विवाह हैं एवं विवाहके आठ भेद हैं ।। ७० ।।

आच्छाद्य चार्हयित्वा च श्रुतशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्यायाः ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ ७१ ॥

विद्वान् या सदाचारी वरको स्वयं बुलाकर उसको और कन्याको बहुमूल्य आभूषण पहनाकर कन्या देनेको ब्राह्मविवाह कहते हैं ॥ ७१ ॥

यज्ञे तु वितते सम्यक् जिनार्चाकर्म कुर्वते ।
अलंकृत्य सुतादानं दैवो धर्मः प्रचक्ष्यते ॥ ७२ ॥

जिन-पूजा रूप महान् अनुष्ठानकी समाप्ति होने पर जिनार्चा करानेवाले साधर्मी पुरुषको वस्त्र-आभूषणोंसे विभूषित करके कन्याके देनेको दैव विवाह कहते हैं ॥ ७२ ॥

एकं वस्त्रयुगं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्या प्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ ७३ ॥

एक या दो जोड़ी वस्त्र वरसे कन्याको देनेके लिए धर्म निमित्त लेकर विधि-पूर्वक कन्या देना आर्ष विवाह है ॥ ७३ ॥

नोट—कहीं-कहीं 'वस्त्रयुगं' के बजाय 'गोमिथुनं' का पाठ भी आया है जिसका अर्थ एक गाय और बैलका है ।

सहोभौ चरतां धर्ममिति तं चानुभाष्य तु ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ७४ ॥

'तुम दोनों साथ-साथ सद्धर्मका आचरण करो', केवल ऐसे आशीर्वादके साथ कन्याके ब्याह देनेको प्राजापत्य विवाह कहते हैं ॥ ७४ ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्यादानं यत्क्रियते चासुरो धर्म उच्यते ॥ ७५ ॥

कन्याके पिता आदिको कन्याके लिए यथाशक्ति धन देकर कन्या लेना आसुर विवाह है ॥ ७५ ॥

स्वेच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥ ७६ ॥

वर और कन्याका अपनी इच्छापूर्वक परस्पर आलिङ्गनादि रूप संयोग गान्धर्व विवाह है । यह विवाह कन्या और वरकी अभिलाषासे होता है । अतः यह मैथुन्य—कामभोगके लिए होता है ॥ ७६ ॥

हत्वा भित्वा च छित्वा च क्रोशन्तीं रुदन्तीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ७७ ॥

कन्याके पक्षके लोगोंको मारकर, उनके अङ्गोपाङ्गोंको छेदकर, उनके प्राकार

(परकोटा) दुर्ग आदिको तोड़-फोड़कर चिल्लाती हुई और रोती हुई कन्याको जबर्दस्तीसे हरण करना राक्षस विवाह है ।।७७।।

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः कथितोऽष्टमः ।।७८।।

सोई हुई, नशेसे चूर, अपने शीलकी संरक्षासे रहित कन्याके साथ एकान्तमें समागम करके विवाह करना पैशाच विवाह है जो पापका कारण है । यह आठवीं किस्मका विवाह है ।।७८।।

पिता पितामहो भ्राता पितृव्यो गोत्रिणो गुरुः ।
मातामहो मातुलो वा कन्याया बान्धवाः क्रमात् ।।८२।।

पिता, पितामह, भाई, पितृव्य (चाचा), गोत्रज मनुष्य, माताका पिता और मामा ये कन्याके क्रमसे बन्धु (वली) हैं ।।८२।।

पित्र्या ददात्रभावे तु कन्या कुर्यात्स्वयंवरम् ।
इत्येवं केचिदाचार्याः प्राहुर्महति सङ्कटे ।।८३।।

विवाह करनेवाले पिता, पितामह आदि न हों, तो ऐसी दशामें कन्या स्वयं अपना विवाह करे । ऐसा कोई-कोई आचार्य कहते हैं । यह विधि महासंकटके समय समझना चाहिए ।।८३।।

तावद्विवाहो नैव स्याद्यावत्सप्तपदी भवेत् ।
तस्मात्सप्तपदी कार्या विवाहे मुनिभिः स्मृता ।।१०५।।

जब तक सप्तपदी (भाँवर) नहीं होती तब तक विवाह हुआ नहीं कहा जाता इसलिए विवाहमें सप्तपदी अवश्य होनी चाहिए, ऐसा मुनियों का कहना है ।।१०५।।

नोट—सप्तपदी जिसका अर्थ सात पद या सात बार ग्रहण करनेका है, पवित्र अग्निके गिर्द सात फेरे लेनेको कहते हैं । अग्नि वैराग्यका रूपक है, इस कारण सप्तपदीका गूढार्थ यही है कि जिससे दुल्हा-दुलहिनके हृदयपर यह बात सात मर्तबा, याने पूरे तौरसे, अंकित कर दी जावे कि विवाहका असली अभिप्राय धर्म-साधन है न कि विषय सेवन ।

चतुर्थी मध्ये ज्ञायन्ते दोषा यदि वरस्य चेत् ।
दत्तामपि पुनर्दद्यात्पिताऽन्यस्मै विदुर्बुधाः ।।१७४।।

चौथीमें यदि कोई दोष वरमें मालूम हो जाये तो दी हुई कन्याको भी उसका पिता किसी दूसरे वरको दे, ऐसा बुद्धिमानोंका मत है ।।१७४।।

प्रवरैक्यादिदोषाः स्युः पतिसङ्गादधो यदि ।
दत्तामपि हरेद्दद्यादन्यस्मा इति केचन ।।१७५।।

अथवा किन्हीं-किन्हीं ऋषियोंका ऐसा भी मत है कि यदि पतिसंगसे प्रवरैक्यादि दोष मालूम हो तो कन्यादाता कन्याको उस वरको न देकर किसी अन्य वरको दे ॥१७५॥

कलौ तु पुनरुद्वाहं वर्जयेदिति गालवः।
कस्मिंश्चिद्देश इच्छन्ति न तु सर्वत्र केचन ॥१७६॥

गालव ऋषि कहते हैं कि कलियुगमें पुनर्विवाहका निषेध है। इसके अतिरिक्त यह किसी-किसी देशमें ही होता है, सर्वत्र नहीं होता ॥१७६॥

अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत्।
मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥१९७॥

दसवें वर्ष तक जिस स्त्रीके संतान न हो तो उसके होते हुए दूसरा विवाह करे। जिसके केवल कन्याएँ ही होती हों तो बारह वर्षके बाद दूसरा विवाह करे, जिसके सन्तान होते मर जाती हो उसके होते हुए १५ वर्षके बाद फिर विवाह करे। और अप्रियवादिनीकी उपस्थितिमें तत्काल दूसरा विवाह करे ॥१९७॥

सुरूपां सुप्रजां चैव सुभगामात्मनः प्रियाम्।
धर्मानुचारिणीं भार्यां न त्यजेद् गृहसद्व्रती ॥१९९॥

रूपवती, पुत्रवती, भाग्यशालिनी, अपनेको प्रिय और धर्मानुचारिणी भार्याके होते हुए दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए ॥१९९॥

अकृत्वाऽर्कविवाहं तु तृतीयां यदि चोद्वहेत्।
विधवा सा भवेत्कन्या तस्मात्कार्यं विचक्षण ॥२०४॥

अर्कविवाह किये विदून तीसरा विवाह समझदार मनुष्यको नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जावेगा तो कन्या विधवाके समान होगी ॥२०४॥

दशम परिच्छेद

दायभाग

श्री भद्रबाहुसंहिता

सैसृती पुत्रसद्भावो भवेदानन्दकारकः ।
यदभावे वृथा जन्म गृह्यते दत्ततो नरैः ॥१॥

अर्थ—संसारमें पुत्रका सद्भाव (होना) ऐसा आनन्दकारक है कि जिसके अभावमें जन्म ही व्यर्थ समझा जाता है। इसलिए औरस पुत्रके अभावमें मनुष्य दत्तक पुत्र ग्रहण करते हैं ॥१॥

बहवो भ्रातरो यस्य यदि स्युरेकमानसाः ।
महत्पुण्यप्रभावोऽयमिति प्रोक्तं महर्षिभिः ॥२॥

अर्थ—यदि किसीके बहुतसे भाई एक चित्तवाले हों तो इसको उसके बड़े भारी पुण्यका प्रभाव समझना चाहिये, ऐसा महर्षियोंने कहा है ॥२॥

पुण्ये न्यूने भ्रातरस्ते द्रुह्यन्ति धनलोभतः ।
आपत्तौ तन्निवृत्त्यर्थं दायभागो निरूप्यते ॥३॥

अर्थ—पुण्यके न्यून होनेपर वे बहुतसे भाई धनके लोभसे परस्पर द्रोह भावको प्राप्त होते हैं, अर्थात् आपसमें लड़ते-झगड़ते हैं। ऐसी आपत्तिमें उसके (वैर भावके) निवारण करनेके लिए यह दायभाग निरूपित किया जाता है ॥३॥

पित्रोरूर्द्ध्वं भ्रातरस्ते समेत्य वसु पैतृकम् ।
विभजेरन् समं सर्वे जीवतो पितुरिच्छया ॥४॥

अर्थ—माता-पिताकी मृत्युके पश्चात् वे सब भाई पैत्रिक सम्पत्तिको एकत्र करके बराबर-बराबर बाँट लें। परन्तु उनके जीते जी पिताके इच्छानुसार ही ग्रहण करें ॥४॥

ज्येष्ठ एव हि गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ।
अन्ये तदनुसारित्वं भजेयुः पितरं यथा ॥५॥

अर्थ—पिताका सम्पूर्ण धन ज्येष्ठ (बड़ा) पुत्र ही ग्रहण करता है; शेष छोटे पुत्र उस अपने बड़े भाईको पिताके समान मानके उसकी आज्ञामें रहते हैं ॥५॥

प्रथमोत्पन्नपुत्रेण पुत्री भवति मानवः ।
पुनर्भवन्तु कतिचित्सर्वस्याधिपतिर्महान् ॥६॥

अर्थ—प्रथम उत्पन्न हुए पुत्रसे मनुष्य पुत्री[1] अर्थात् पुत्रवान् होता है, और पीछेसे कितने ही पुत्र क्यों न पैदा हों परन्तु उन सबका अधिपति वह बड़ा पुत्र ही कहलाता है ॥६॥

यस्मिन् जाते पितुर्जन्म सफलं धर्मजे सुते ।
पापित्वमन्यथा लोका वदन्ति महदद्भुतम् ॥७॥

अर्थ—जिस धर्मपुत्रके उत्पन्न होनेसे पिताके जन्मको लोक सफल कहते हैं उसीके न होनेसे उसको पापी कहते हैं। यह बड़ा आश्चर्य है ॥७॥

पुत्रेण स्यात्पुण्यवत्त्वमपुत्रः पापभुग्भवेत् ।
पुत्रवन्तोऽत्र दृश्यन्ते पामराः कणयाचकाः ॥८॥

दृष्टास्तीर्थकृतोऽपुत्रा पञ्चकल्याणभागिनः ।
देवेन्द्रपूज्यपादाब्जा लोकत्रयविलोकिनः ॥९॥

अर्थ—अनेक लोग इस लोकमें पुत्रसे पुण्यवान् कहे जाते हैं और पुत्रहीन पापी कहे जाते हैं परन्तु बहुतेरे पुत्रवान् नीच और दाने माँगते हुए देखे जाते हैं, तथा पुत्र-रहित पञ्चकल्याणके भागी देवेन्द्रोंसे पूज्य हैं चरणकमल जिनके और तीन लोकके देखनेवाले तीर्थंकर भी देखे जाते हैं ॥८-९॥

ज्येष्ठोऽविभक्तभ्रातॄन् वै पितेव परिपालयेत् ।
तेऽपि तं भ्रातरं ज्येष्ठं जानीयुः पितृवत्सदा ॥१०॥

अर्थ—ज्येष्ठ भाईको चाहिए[2] कि अपने अविभक्त अर्थात् एकत्र रहनेवाले

---

१. ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानव. ।

—मनुस्मृति अ० ९, श्लो० ६

पूर्वजेन तु पुत्रेण अपुत्रः पुत्रवान् भवेत् ।

—अर्हन्नीति श्लो० २३ ।

२. पितेव पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्रातॄन् तृयवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्तेरञ्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥

—मनुस्मृति अ० ९ श्लो० ८ ।

विभक्तान्नविभक्तान्वै भ्रातॄञ्ज्येष्ठः पितेव सः ।
पालयेत्तेऽपि तं ज्येष्ठं सेवन्ते पितरं यथा ॥

—अर्हन्नीति श्लो० २२ ।

भाइयोंका पिताके समान पालन करे और उन भाइयोंको भी चाहिए कि ज्येष्ठ भाईको सदैव पिताके समान मानें ॥१०॥

यद्यपि भ्रातृणामेकचित्तत्वं पुण्यप्रभावस्तथापि ।
धर्मवृद्ध्यै पृथग्भवनमपि योज्यम् ॥११॥
मुनीनामाहारदानादिना सर्वेषां पुण्यभागित्वात् ।
भोगभूमिजन्मरूपफलप्राप्तिः स्यात्तदेवाह ॥१२॥

अर्थ—यद्यपि भाइयोंका एकचित्तत्व होना पुण्यका प्रभाव है, तथापि धर्मकी वृद्धिके लिए पृथक्-पृथक् होना भी योजनीय है। क्योंकि मुनियोंके आहार दानादिके द्वारा जो पुण्य होगा उसके सब भाई पृथक्-पृथक् भागी होंगे, जिसके कि फल-रूप भोगभूमिमें जन्मकी प्राप्ति होती है ॥११-१२॥

विभक्ता भ्रातरो भिन्नास्तिष्ठन्तु सपरिच्छदाः ।
दानपूजादिना पुण्यं वृद्धिः संजायतेतराम् ॥१३॥

अर्थ—विभक्त हुए भाई अपने-अपने परिवारके सहित भिन्न-भिन्न रहें, क्योंकि दान, पूजा आदि कार्योंसे विशेष पुण्यवृद्धि होती है ॥१३॥

तद्द्रव्यं द्विविधं प्रोक्तं स्थावरं जङ्गमं तथा ।
स्थानादि स्थावरं प्रोक्तं यदन्यत्र न गम्यते ॥१४॥

अर्थ—यह द्रव्य, जिसका दायभाग किया जाता है, दो प्रकारका कहा गया है, एक स्थावर (गैरमनकूला) और दूसरा जंगम (मनकूला)। जिस द्रव्यका गमन अन्यत्र न हो सके, अर्थात् जो कहीं जा न सके, जैसे कि स्थानादि, उसे स्थावर कहते हैं ॥१४॥

जङ्गमं रौप्य गाङ्गेय भूषा वस्त्राणि गोधनम् ।
यदन्यत्र परेणापि नीयते स्त्र्यादिकं तथा ॥१५॥

अर्थ—और जो अन्यत्र भी पहुँचाया जा सके जैसा कि चाँदी, सोना, भूषण, वस्त्र, गोधन (गाय भैंस आदि चौपाये) और दास-दासी आदि, सो सब जङ्गम द्रव्य है ॥१५॥

स्थावरं न विभागार्हं नैव कार्या विकल्पना ।
स्थास्याम्यत्र चतुष्पादेवात्र त्वं तिष्ठ मद्गृहे ॥१६॥

अर्थ—स्थावर द्रव्य विभाग करनेके योग्य नहीं है।[1] उसके विभाग करनेकी

---

१. न विभज्यं न विक्रेयं स्थावरं न कदापि हि ।
प्रतिष्ठाजनकं लोके आपदाकालमन्तरम् ॥
—आर्हन्नीति ५।

कल्पना नहीं करनी चाहिए। "यहाँ पर चतुर्थ भागमें मैं रहूँगा, और इस घरमें तुम रहो" ऐसा भाइयोंको प्रवन्ध कर लेना चाहिए ॥१६॥

सर्वेपि भ्रातरो ज्येष्ठं विभक्ताज्जङ्गमा तथा।
किंचिदंश च ज्येष्ठाय दत्त्वा कुर्युः समांशकम् ॥१७॥

अर्थ—सव भाई अपने बड़े भाईको पहिले अविभक्त जङ्गम द्रव्यमेंसे कुछ अंश देकर फिर शेष सम्पत्तिको सव मिलकर बराबर-बराबर बांट लें ॥१७॥

गोधनं तु समं भक्त्वा गृह्णीयुस्ते निजेच्छया।
कश्चिद्धर्तुं न शक्तश्चेदन्यो गृह्णात्यसंशयम् ॥१८॥

अर्थ—गोधन (अर्थात् गाय महिषादि जानवरों) को अपने-अपने इच्छानुसार बराबर भाग करके ले लें, और यदि भागाधिकारियोंमेंसे कोई धारण करनेमें समर्थ न हो तो उस गोधनको दूसरा भागी बेखटके ग्रहण कर ले ॥१८॥

भ्रातृणां यदि कन्या स्यादेका बह्व्यः सहोदरैः।
स्वांशात्सर्वैस्तुरीयांशमेकीकृत्य विवाह्यते ॥१९॥

अर्थ—यदि भाइयोंकी सहोदरी एक अथवा बहुतसी कन्या हों तो सब भाइयोंको अपने-अपने भागमेंसे चौथा-चौथा भाग एकत्र करके कन्याओंका विवाह कर देना चाहिए ॥१९॥

ऊढायास्तु न भागोऽस्ति किंचिद् भ्रातृसमक्षतः।
विवाहकाले यत्पित्रा दत्तं तस्यास्तदेव हि ॥२०॥

अर्थ—भाइयोंके समक्ष विवाहिता कन्याका पिताकी संपत्तिमें कुछ भी भाग नहीं है। विवाहकालमें पिताने उसे जो दे दिया हो वही उसका है ॥२०॥

सहोदरैर्निजाम्बाया भगस्सम उदाहृतः।
साधिको व्यवहारार्थं मृतौ सर्वेऽशभागिनः ॥२१॥

अर्थ—माताका भी भाइयोंके साथ समान भाग कहा गया है और इसके अतिरिक्त व्यवहार-साधनके लिए माताको कुछ अधिक और भी देना चाहिए। माताके मरनेपर उसके धनके सब भाई समानांश भागी होते हैं ॥२१॥

एककाले युगोत्पत्तौ पूर्वजस्य हि ज्येष्ठता।
विभागसमये प्रोक्तं प्राधान्यं तस्य सूरिभिः ॥२२॥

अर्थ—एक कालमें दो पुत्रोंकी उत्पत्तिमें पूर्वजके, अर्थात् जो पहिले निर्गत हुआ हो उसे ही, ज्येष्ठता होती है और विभाग के समय आचार्योंने उसीका प्राधान्य कहा है ॥२२॥

यदि पूर्वं सुता जाता पश्चात्पुत्रश्च जायते।
तत्र पुत्रस्य ज्येष्ठत्वं न कन्याया जिनागमे ॥२३॥

अर्थ—यदि पूर्वमें लड़की उत्पन्न हो और पीछे पुत्र उत्पन्न हो तो भी जैन-शास्त्रमें लड़का ही बड़ा माना गया है न कि लड़की ॥२३॥

यस्यैकपुत्री निष्पन्ना परं संतत्यभावतः।
सा तत्सुतो बाऽधिपतिः पितृद्रव्यस्य सर्वतः ॥२४॥

अर्थ—जिसके केवल एक पुत्री ही उत्पन्न हो और अन्य सन्तानका अभाव हो, तो वह पुत्री और उस पुत्रीका पुत्र (अर्थात् दौहित्र) उस पिताके द्रव्यके सर्वतः स्वामी[1] होते हैं ॥२४॥

नोट—निकटवर्ती दायादोंके अभावमें ही लड़की और उसका लड़का वारिस होते हैं।

वक्ष्यमाण निदानानामभावे पुत्रिका मता।
दाये वा पिण्डदाने च पुत्रैर्दौहित्रकाः समाः ॥२५॥

अर्थ—उन नियमोंके अभावमें जो आगे कहे जायँगे पुत्रके सदृश पुत्रिका मानी गई है और दायभाग तथा पिण्डदान (सन्ततिसञ्चालन)के लिए पुत्रोंके समान दौहित्र माने गये हैं ॥२५॥

नोट—यह नियम (कायदे) इस पुस्तकमें नहीं मिलते हैं जिससे प्रकट होता है कि यह शास्त्र अधूरा है और किसी बड़े शास्त्रके आधार पर लिखा गया है। परन्तु विर्साका क़ानून वर्धमाननीति आदि अन्य शास्त्रोंमें दिया हुआ है।

आत्मा वै जायते पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठंत्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥२६॥

अर्थ—आत्म-स्वरूप पुत्र होता है और पुत्रके समान पुत्री है, तो फिर उस आत्मरूप पुत्रीकी उपस्थितिमें दूसरा कोई धनका हरण कैसे कर सकता है?॥२६॥

ऊढानूढाऽथवा कन्या मातृद्रव्यस्य भागिनी।
अपुत्रपितृद्रव्यस्याधिपो दौहित्रको भवेत् ॥२७॥

अर्थ—माताके द्रव्यकी भागिनी कन्या होती है, चाहे वह विवाहित हो अथवा अविवाहित, और पुत्र-रहित पिताके द्रव्यका अधिकारी दौहित्र होता है ॥२७॥

---

१. यस्यैकस्यां तु कन्यायां जातायां नान्यसन्ततिः।
प्राप्तं तस्याश्चाधिपत्यं सुतायास्तु सुतस्य च ॥
अर्हन्नीति ३१

न विशेषोऽस्मिन् पौत्रदौहित्रयोः स्मृतः ।
पित्रोरेकत्रसम्बन्धाज्जातयोरेकदेहतः ॥२८॥

अर्थ—(क्योंकि) इस लोकमें माता-पिताके एकत्र सम्बन्धसे उत्पन्न हुए एक देह रूप जो पुत्र और पुत्री हैं, उनसे उत्पन्न हुए पौत्र और दौहित्रमें कुछ विशेषता (अर्थात् भेद) नहीं जानना चाहिए ॥२८॥

ऊढपुत्र्यां परेतायामपुत्रायां च तत्पतिः ।
स स्त्रीधनस्य द्रव्यस्याधिपतिस्तत्पतिः सदा ॥२९॥

अर्थ—यदि विवाहिता पुत्री निःसन्तान मर जावे तो उसके द्रव्यका मालिक उसका पति ही होगा ॥२९॥

तयोरभावे तत्पुत्रो दत्तको गोत्रियः सति ।
पितृद्रव्याधिपः स्याद्वै गुणवान् पितृभक्तिमान् ॥३०॥

अर्थ—पति-पत्नी दोनोंके मरने पर पितामें भक्ति करनेवाला गुणवान् पुत्र औरस हो अथवा दत्तक हो पिताके सम्पूर्ण द्रव्यका मालिक होता है ॥३०॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां ब्राह्मणेन विवाहिता ।
कन्यासञ्जातपुत्राणां विभागोऽयं बुधैः स्मृतः ॥३१॥

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंकी कन्याओंका यदि ब्राह्मणके साथ विवाह किया जावे तो उनमें पैदा हुए पुत्रोंका भाग पिता सम्बन्धी द्रव्यमें इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुषोंने कहा है—॥३१॥

पितृद्रव्यं जंगमं वा स्थावरं गोधनं तथा ।
विभज्य दशधा सर्वं गृह्णीयुः सर्व एकतः ॥३२॥
विप्राजस्तुर्यभागान्वै त्रीन्भागान् क्षत्रियासुतः ।
द्वौ भागौ वैश्यजो गृह्यादेकं धर्मे नियोजयेत् ॥३३॥

अर्थ—पिताके जंगम तथा गोधनादिक और स्थावर द्रव्यमें दस भाग लगाकर भाइयोंको इस प्रकार लेना चाहिए कि ब्राह्मणीसे उत्पन्न हुए पुत्रको चार भाग, क्षत्रियासे उत्पन्न हुएको तीन भाग, और वैश्य माँ से उत्पन्न हुएको दो भाग, तथा अवशिष्ट एक भाग धर्मार्थ नियुक्त करें ॥३२-३३॥

यद्गेहे दासदास्यादिः पालनीयो यवीयसा ।
सर्वे मिलित्वा वा कुर्युरन्नांशुकनिबन्धनम् ॥३४॥

अर्थ—गृहमें जो दासीसे उत्पन्न हुए पुत्र हों तो उनका पालन छोटे भाईको करना चाहिए अथवा सब भाई मिलकर अन्न-वस्त्रका प्रबन्ध करें ॥३४॥

क्षत्रियस्य सवर्णाजोऽर्द्धभागी वैश्यजोद्भवः ।
तुर्यांशभागी शूद्राजः पितृदत्तांशुकादिभृत् ॥३५॥

अर्थ—क्षत्रिय पितासे सवर्णा स्त्री (क्षत्रिया) से उत्पन्न हुए पुत्रको पिताके द्रव्यका अर्धांश तथा वैश्याज पुत्रको चतुर्थांश मिलना चाहिए, और शूद्रासे उत्पन्न हुआ जो पुत्र है वह जो द्रव्य (अन्न-वस्त्रादिक) उसको उसके पिताने दिया है उसीका स्वामी हो सकता है (अधिक नहीं) ॥३५॥

वैश्यस्य हि सवर्णाजः सर्वस्वामी भवेत्सुतः ।
शूद्रापुत्रोऽन्नवासोर्हं इति वर्णत्रये विधिः ॥३६॥

अर्थ—वैश्यका वैश्य स्त्री से उत्पन्न हुआ पुत्र ही सर्व सम्पत्तिका अधिकारी हो सकता है, शूद्रासे उत्पन्न हुआ लड़का केवल अन्न-वस्त्रका ही अधिकारी है । इस प्रकार वर्णत्रयकी विभाग विधि है ॥३६॥

शूद्रस्यैकसवर्णाजा एको द्वौ वाऽधिका अपि ।
समांशभागिनः सर्वे शतपुत्रा भवन्त्यपि ॥३७॥

अर्थ—शूद्र पिताके शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न हुए पुत्र एक, दो तथा शत भी हों तो वे समभागके अधिकारी हैं ॥३७॥

एकपितृजभ्रातृणां पुत्रश्चैकस्य जायते ।
तेन पुत्रेण ते सर्वे बुधैः पुत्रिण ईरिताः ॥३८॥

अर्थ—पिताके उत्पन्न हुए पुत्रोंमेंसे यदि किसी एकके पुत्र हो तो उस पुत्रसे सभी पुत्र पुत्रवाले समझे जाते हैं, ऐसा बुद्धिमानोंका कथन है ॥३८॥

कस्यचिद्बहुपत्नीषु ह्येका प्रजनयेत्सुतम् ।
तेन पुत्रेण महिलाः पुत्रवत्यः स्मृताः बुधैः ॥३९॥

अर्थ—यदि किसी पुरुषकी बहुत स्त्रियोंमेंसे किसी एकके पुत्र हो तो वे सभी स्त्रियाँ उस पुत्रके कारण पुत्रवती समझनी चाहिए, बुद्धिमानोंकी ऐसी आज्ञा है ॥३९॥

तासां मृतौ सर्वधनं गृह्णीयात्सुत एव हि ।
एको भगिन्यभावे चेत्कन्यैकस्याः पतिर्वसोः ॥४०॥

अर्थ—उन सब स्त्रियोंके मरनेपर उनका धन वह पुत्र लेता है और जब एक भी स्त्री उसके पिताकी न रहे तो वह पिताका कुल धन लेता है ॥४०॥

औरसेऽसति पितृभ्यां ग्राह्यौ वै दत्तकः सुतः ।
सोऽप्यौरस इव प्रीत्या सेवां पित्रोः करोत्यसौ ॥४१॥

अर्थ—अपने अङ्गसे उत्पन्न हुआ पुत्र यदि न हो तो माता-पिताको दत्तक पुत्र लेना चाहिए, क्योंकि दत्तक पुत्र भी माता-पिताकी सेवा प्रीतिपूर्वक करता है ॥४१॥

अपुत्रो मानवः स्त्री वा गृह्णीयाद्दत्तपुत्रकम् ।
पूर्वं तन्मातृपित्रादेः ससाक्षिलेखनं स्फुटम् ॥४२॥

अर्थ—निःसन्तान स्त्री अथवा पुरुष पुत्र गोद लेते हैं। प्रथम ही उसके माता-पिताके हस्तसे साक्षीपूर्वक लेख लें ॥४२॥

स्वकीयभ्रातृज्ञातीयजनसाक्षियुतं मिथः ।
कारयित्वा राजमुद्राङ्कितं भूपाधिकारिभिः ॥४३॥
कारयेत्पुनराहूय नरनारीः कुटुम्बिकाः ।
वादित्रनृत्यगानादिमंगलाचारपूर्वकम् ॥४४॥

अर्थ—परस्पर अपने भाई-बन्धु और जातीय पुरुषोंके साक्षी सहित (लेखको) राजाके कार्यभारी पुरुषोंसे राजाकी मुद्रासे चिह्नित कराकर तत्पश्चात् अपने कुटुम्बके नर-नारियोंको बुलाकर मङ्गलाचारपूर्वक वादित्र नृत्य गान आदि करावे ॥४३—४४॥

द्वारोद्घाटनसत्कर्म कुर्वन्ति श्रीजिनालये ।
घृतकुम्भं स्वस्तिकं च जिनाग्रे स्थापयेद् गुरुम् ॥४५॥

अर्थ—और श्रीजिनचैत्यालयमें जाकर द्वारोद्घाटन आदि सत्क्रिया करें तथा श्रीजिनेन्द्र देवकी प्रतिमाके आगे घृतकुम्भ स्वस्तिक आदि रक्खें ॥४५॥

उत्तरीयमधोवस्त्रं दत्वा व्याघुट्य मन्दिरम् ।
स्वं समागत्य नृस्त्रिभ्यस्ताम्बूल श्रीफलादिकम् ॥४६॥
स्त्रीभ्यश्च कञ्चुकीर्दयात्कुंकुमालक्तपूर्विकाः ।
अशनं कारयित्वा वै जातकर्मक्रियां चरेत् ॥४७॥

अर्थ—फिर श्रीमन्दिरजीमें धोती-दुपट्टा पूजाके निमित्त दे, घण्टा बजावे और अपने घर आकर पुरुष-स्त्रियोंको ताम्बूल, श्रीफल आदि दे तथा स्त्रियोंको कुंकुमादि-संयुक्त कंचुकी (आँगी धोती) दे और भोजन कराकर जात-कर्म नामक क्रिया (जन्म-संस्कार) करे ॥४६–४७॥

परैर्भ्रात्रादिभिर्नीतं मुकुटं श्रीफलादिकम् ।
एकद्वित्रिचतुरोऽपि मुद्रा रक्षेत्पिता शिशोः ॥४८॥

अर्थ—बालकका पिता दूसरे भाई वगैरह कुटुम्बियों द्वारा लाये गये मुकुट, श्रीफलादिक तथा एक दो तीन चार आदि मुद्रा (रुपये) ले ले ॥४८॥

व्यवहारानुसारेणं दानं ग्रहणमेव च।
एतत्कर्मणि संजातेऽयं पुत्रोऽस्येति कथ्यते ॥४९॥

अर्थ—इस प्रकार अपने कुलादि व्यवहारके उचित देना-लेना जब हो जावे तब "इसका यह पुत्र है" ऐसा कहा जाता है ॥४९॥

तदैव राज्यकर्मादिव्यापारेषु प्रधानताम्।
प्राप्नोति भूमिग्रामादिवस्तुष्वपि कृतिं पराम् ॥५०॥

अर्थ—और उसी समय उस पुत्रको राज्यकर्मादि व्यापारोंमें प्रधानता तथा भूमिग्रामादि वस्तुओंमें अधिकार मिलता है ॥५०॥

स्वामित्वं च तदा लोकव्यवहारे च मान्यताम्।
तत्संस्कारे कृते चैव पुत्रिणौ पितरौ स्मृतौ ॥५१॥

अर्थ—और तभी लोकके व्यवहारमें स्वामित्व तथा मान्यता होती है। और पुत्रके जन्म-संस्कार करनेपर ही माता-पिता दोनों पुत्रवाले कहे जाते हैं ॥५१॥

दत्तकः प्रतिकूलः स्यात् पितृभ्यां प्राग्मृदूक्तितः।
बोधयेत्तं पुनर्दर्पात् तादृशो जनकस्त्वरम् ॥५२॥
तत्पित्रादीन् तदुद्वान्तं ज्ञापयित्वा प्रबोधयेत्।
भूयोऽपि तादृशश्चैव बन्धुभूपाधिकारिणाम् ॥५३॥
आज्ञामादाय गृहतो निष्कास्यो ह्यर्भकस्त्वरम्।
न तन्नियोगं भूपाद्या शृण्वन्ति हि कदाचन ॥५४॥

अर्थ—यदि दत्तक पुत्र माता-पिताकी आज्ञासे प्रतिकूल हो जावे तो वे उसको कोमल वचनोंके द्वारा समझावें; यदि न समझे तो पिता उसको धमकाके समझावें। इसपर भी यदि न समझे, तो उसके पूर्व माता-पितासे उसका अपराध कहकर समझावें। यदि फिर भी वह जैसाका तैसा ही रहे, तो अपने कुटुम्बीजनोंकी तथा राजाके अधिकारियोंकी आज्ञा लेकर उसे घरसे निकाल देना चाहिए। इसके पश्चात् उसके अधिकारकी प्रार्थना राजा स्वीकर नहीं कर सकता ॥५२—५४॥

दत्तपुत्रं गृहीत्वा या स्वाधिकारं प्रदाय च।
जङ्गमे स्थावरे वाऽपि स्थातुं स्वं धर्मवर्त्मनि ॥५५॥

अर्थ—स्त्री दत्तक पुत्रको लेकर और उसको सम्पूर्ण अधिकार देकर आप धर्म-कार्यमें संलग्न होनेके निमित्त जङ्गम तथा स्थावर द्रव्य उसको सौंप देती है ॥५५॥

पुनः स दत्तको काललब्धि प्राप्य मृतो यदि।
भर्तृद्रव्यादि यत्नेन रक्षयेत् स्तैन्यकर्मतः ॥५६॥

अर्थ—पुनः काल-लब्धिके वश यदि वह पुत्र बिना विवाह ही मर जावे तो भर्ताके द्रव्यकी चोरी आदिसे रक्षा करनी चाहिए ॥५६॥

न तत्पदे कुमारोऽन्यः स्थापनीयो भवेत्पुनः ।
प्रेतेऽनूढे न पुत्रस्याज्ञाऽस्ति श्रीजिनशासने ॥५७॥

अर्थ—उस पुत्रका मरण हो जानेपर पुनः उन कुमारके पदपर दूसरे किसीको स्थापित करनेकी आज्ञा श्रीजिनशासनमें नहीं है, यदि वह कुँवारा मर जावे ॥५७॥

सुतासुतसुतात्मीय भागिनेयेभ्य इच्छया ।
देयाद्धर्मेऽपि जामात्रेऽन्यस्मै वा ज्ञातिभोजने ॥५८॥

अर्थ—उस (मृतक पुत्र) के द्रव्यको दोहिता, दोहिती, भानजा, जमाई तथा किसी अन्यको दे सकते हैं तथा जातिके भोजन अथवा धर्म-कार्योंमें लगा सकते हैं ॥५८॥

स्वयं निजास्पदे पुत्रं स्थापयेच्चेन्मृतप्रजाः ।
युक्तः परमनूढस्य पदे स्थापयितुं न हि ॥५९॥

अर्थ—यदि पुत्र मर गया हो तो अपनी जगह पर पुत्र स्थापन करनेकी आज्ञा है, परन्तु अविवाहित पुत्रके स्थान पर स्थापन नहीं कर सकते हैं ॥५९॥

पित्रोः सत्वे न शक्तः स्यात् स्थावरं जङ्गमं तथा ।
विविक्रियं गृहींतु वा कर्तुं पैतामहं च सः ॥६०॥

अर्थ—माता-पिताके होते हुए दत्तक पुत्रको उनके स्थावर व जङ्गम द्रव्यको गिरवी रखने तथा बेचनेका अधिकार नहीं है ॥६०॥

पैतामहक्रमायाते द्रव्येऽनधिकृतिः स्मृता ।
श्वशुरस्य निजे कृत्ये व्ययं कर्तुं च सर्वथा ॥६१॥

अर्थ—श्वशुरकी पैदा की हुई सम्पत्तिमें और उसमें जो उसको पुरखोंसे मिली है विधवा बहूको निजी कार्योंके लिए व्यय करनेका कोई अधिकार नहीं है ॥६१॥

सुताज्ञया बिना भक्तेऽभक्ते तु धर्मकर्मणि ।
मैत्रज्ञातिव्रतादौ तु व्ययं कुर्याद्यथोचितम् ॥६२॥

अर्थ—(पिता) सुतकी आज्ञाके बिना ही विभाग की हुई अथवा अविभक्त द्रव्यका व्यय (खर्च) मित्रादि सम्बन्धी जातिव्रतादिकोंमें कर सकता है ॥६२॥

तन्मृतौ तु स्त्रियश्चापि व्ययं कर्तुमशक्तता ।
भ.जनांशुकमात्रं तु गृह्णीयाद् वित्तमासतः ॥६३॥

अर्थ—उसके मर जानेपर उसकी स्त्रीको जायदादके पृथक् कर देनेका अधिकार नहीं है। वह केवल भोजन-वस्त्रके वास्ते हैसियतके मुताविक ले सकती है ॥६३॥

नोट—यहाँ पर रचयिताके विचारमें यह बात है कि पुत्र पिताकी जीवित अवस्थामें मर गया है, इसलिए "उसके मर जानेपर" का अभिप्राय "लड़केके मर जानेका" है।

सर्वद्रव्याधिकारस्तु व्यवहारे सुतस्य वै।
न व्ययीकरणे रिक्थस्य हि मातृसमक्षकम् ॥६४॥

अर्थ—सम्पूर्ण द्रव्यका अधिकार व्यवहार करनेमें पुत्रको है, परन्तु माताकी उपस्थितिमें खर्च करनेका नहीं ॥६४॥

सुते प्रेते सुतवधूर्भर्तृ सर्वस्वहारिणी।
श्वश्र्वा सह कियत्कालं माध्यथ्येन हि स्थीयते ॥६५॥

अर्थ—पुत्रके मर जाने पर भर्तांके सम्पूर्ण द्रव्यकी मालिक पुत्रकी स्त्री होती है, परन्तु उसको चाहिए कि वह अपनी श्वश्रु (सास) के साथ कुछ काल पर्यन्त विनय्पूर्वक रहे ॥६५॥

रक्षन्ती शयनं भर्तुः पालयन्ती कुटुम्बकम्।
स्वधर्मनिरता पुत्रं भर्तृस्थाने नियोजयेत् ॥६६॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य व्रतको धारण करती हुई, तथा अपने धर्ममें तत्पर, कुटुम्बका पालन करती हुई, अपने पुत्रको भर्तांके स्थानपर अर्थात् भर्तांके द्रव्यका अधिकारी नियुक्त करे ॥६६॥

न तत्र श्वश्रूर्यत्किञ्चिद्वदेदनधिकारतः।
नापि पित्रादिलोकानामधिकारोऽस्ति सर्वथा ॥६७॥

अर्थ—पुत्रको भर्ताकी जगहमें नियोजित करनेमें उसकी सासको रोकनेका कुछ अधिकार नहीं है, और उसके मातापिता आदिको भी कुछ अधिकार नहीं है ॥६७॥

दत्तं चतुर्विधं द्रव्यं नैव गृह्णन्ति चोत्तमाः।
अन्यथा सकुटुम्बास्ते प्रयान्ति नरकं ततः ॥६८॥

अर्थ—उत्तम पुरुष चारों प्रकारके दिए हुए द्रव्यको फिर ग्रहण नहीं करते। ऐसा करनेसे वे कुटुम्बके साथ नरकके पात्र होते हैं ॥६८॥

बहुपुत्रयुते प्रेते भ्रातृषु क्लीबतादियुक्।
स्याच्चेत्सर्वे समान्भागान्न दद्युः पैतृकाद्धनात् ॥६९॥

अर्थ—बहुत पुत्रोंको छोड़कर पिताके मर जानेपर यदि उन भाइयोंमेंसे कोई नपुंसकता आदि दोष सहित हो, तो उसको पिताके द्रव्यमेंसे समान भाग नहीं मिल सकता है ॥६९॥

पङ्गुरुन्मत्तक्लीवान्धखलकुब्जजडास्तथा ।
एतेऽपि भ्रातृभिः पोष्या न च पुत्रांशभागिनः ॥७०॥

अर्थ—यदि भाइयोंमेंसे कोई लँगड़ा, पागल तथा उन्मत्त, क्लीब, अन्धा, खल (दुष्ट), कुबड़ा तथा सिड़ी होवे तो अन्य भाइयोंको अन्न-वस्त्रसे उसका पोषण करना चाहिए। परन्तु वह पुत्र भागका मालिक नहीं हो सकता ॥७०॥

मृतवध्वाधिकारीशो बोधितव्यो मृदूक्तितः ।
न मन्येत पुरा भूपामात्यादिभ्यः प्रबोधयेत् ॥७१॥
भूयोऽपि तादृशः स्याच्चेदमात्याज्ञानुसारतः ।
पुरातनो नूतनो वा निष्कास्यो गृहतः स्फुटम् ॥७२॥

अर्थ—मृत पतिकी विधवा स्त्री अपने द्रव्यके अधिकारीको कोमल वचनसे समझावे, यदि नहीं माने तो राजा, मन्त्री आदिकोंके समक्ष उसको समझावे। यदि फिर भी नहीं समझे तो मन्त्रीकी आज्ञा लेकर पुराना हो या नवीन हो उसे घरसे निकाल दे ॥७१-७२॥

रक्षणीयं प्रयत्नेन भर्त्रिवं स्वं कुलस्त्रिया ।
कार्यतेऽन्यजनैर्योग्यैर्व्यवहारः कुलागतः ॥७३॥

अर्थ—अपने पतिके समान कुलीन स्त्रीको अपने द्रव्यका यत्नपूर्वक रक्षण करना चाहिए और कुलक्रमके अनुसार अपने व्यवहारको भी दूसरे योग्य पुरुषों द्वारा चलाना चाहिए ॥७३॥

कुर्यात् कुटुम्बनिर्वाहं तन्मिषेण च सर्वथा ।
येन लोके प्रशंसा स्याद्धनवृद्धिश्च जायते ॥७४॥

अर्थ—इसी प्रकारसे उसे चाहिए कि सर्वथा कुटुम्बका निर्वाह करे; जिससे लोकमें कीर्ति और धनकी वृद्धि हो ॥७४॥

ग्राह्यः सद्गोत्रजः पुत्रो भर्ता इव कुलस्त्रिया ।
भर्तृस्थाने नियोक्तव्यो न श्वश्र्वा स्वपतेः पदे ॥७५॥

अर्थ—भर्ताके समान वह कुलीन स्त्री किसी श्रेष्ठ गोत्रमें पैदा हुए पुत्रको लेकर पतिकी गद्दीपर नियुक्त करे। उसके पतिके लिए उसकी सासको गोद लेनेकी आज्ञा नहीं है ॥७५॥

शक्ता पुत्रवधूरेव व्ययं कर्तुं च सर्वथा।
न श्वश्वाश्चाधिकारोऽत्र जैनशास्त्रानुसारतः ॥७६॥

अर्थ—खर्च करनेका अधिकार भी सर्वथा पुत्रकी वधूको ही है। किन्तु जैन-सिद्धान्तके अनुसार उसकी सासको नहीं है ॥७६।

कुर्यात्पुत्रवधूः सेवां श्वश्वोः पतिरिव स्वयम्।
सापि धर्मे व्ययं त्विच्छेद्दद्यात्पुत्रवधूर्वसु ॥७७॥

अर्थ—उसको चाहिए कि जिस प्रकार उसका पति सेवा करता था उसी प्रकार श्वश्रू (सास) की सेवा करे। यदि सासको धर्म-कार्य करनेकी इच्छा हो तो उसको धन भी दे ॥७७॥

औरसो दत्तको मुख्यौ क्रीतसौतसहोदराः।
तथैवोपनतश्चैव इमे गौणा जिनागमे ॥७८॥

अर्थ—जैन शास्त्रके अनुसार पुत्रोंमें औरस और दत्तक मुख्य हैं। और क्रीत, सौत, सहोदर और उपनत गौण हैं ॥७८॥

दायादाः पिण्डवांश्चैव इतरे नाधिकारिणः।
औरसः स्वस्त्रियां जातः प्रीत्या दत्तश्च दत्तकः ॥७९॥

अर्थ—यही दायाद हैं और पिण्डदान कर सकते हैं (अर्थात् नस्ल चला सकते हैं)। इनके अतिरिक्त और कोई न दायाद हैं और न नस्ल चला सकते हैं। जो अपनी स्त्री से उत्पन्न हुआ हो वह औरस है; जो प्रीतिपूर्वक गोद दिया गया हो वह दत्तक है ॥७९॥

द्रव्यं दत्वा गृहीतो यः स क्रीतः प्रोच्यते बुधैः।
सौतश्च पुत्रतनुजो लघुभ्राता सहोदरः ॥८०॥

अर्थ—जिसको रुपया देकर गोद लिया हो वह क्रीत है, ऐसा बुद्धिमानोंका कथन है। जो लड़केका लड़का अर्थात् पोता हो वह सौत है, और माँ-जाये छोटे भाईका नाम सहोदर है ॥८०॥

मातृपितृपरित्यक्तो दुःखितोऽस्मितरां तव।
पुत्रो भवामीति वदन् विज्ञै रुपनतः स्मृतः ॥८१॥

अर्थ—जिसको मां बापने छोड़ दिया हो और जो दुःखी फिरता हुआ आकर यह कहे कि "मैं पुत्र होता हूँ" उसको बुद्धिमान उपनत बताते हैं ॥८१॥

मृतपित्रादिकतः पुत्रः समः कृत्रिम ईरित।
पुत्रभेदा इमे प्रोक्ताः मुख्यगौणेतरादिकाः ॥८२॥

अर्थ—कृत्रिम वह पुत्र होता है जिसके माता-पिता मर गये हों और जो (अपने) पुत्रके सदृश हो। इस प्रकार मुख्य, गौण और अन्य पुत्रोंकी श्रेणी है ॥८२॥

तत्राद्यौ हि स्मृतौ मुख्यौ गौणाः क्रीतादयस्त्रयः।
तथैवोपनताद्याश्च पुत्रकल्पा न पिण्डदाः ॥८३॥

अर्थ—इनमेंसे प्रथमके दो (अर्थात् औरस और दत्तक) मुख्य हैं। फिर तीन (अर्थात् क्रीत, सौत, सहोदर) गौण हैं, और उपनत और कृत्रिमकी गिनती लड़कोंमें होती है परन्तु वे नस्ल नहीं चला सकते हैं ॥८३॥

मुक्त्युपायोद्यतश्चैकोऽविभक्तेषु च भ्रातृषु।
स्त्रीधनं तु परित्यज्य विभजेरन् समं धनम् ॥८४॥

अर्थ—यदि विभागके पूर्व ही कोई भाई मुक्ति प्राप्त करनेके निमित्त साधु हो गया हो तो स्त्री-धनको छोड़कर सम्पत्तिमें सबके बराबर भाग लगाने चाहिए ॥८४॥

विवाहकाले पितृभ्यां दत्तं यदभूषणादिकम्।
तदध्यग्निकृतं प्रोक्तमग्निब्राह्मणसाक्षिकम् ॥८५॥

अर्थ—विवाह समयमें जो माता-पिताने भूषणादिक द्रव्य अग्नि और ब्राह्मणोंकी साक्षीमें दिया हो वह अध्यग्नि कहा जाता है ॥८५॥

यत्कन्यया पितुर्गेहादानीतं भूषणादिकम्।
अध्याह्वनिकं प्रोक्तं पितृभ्रातृसमक्षकम् ॥८६॥

अर्थ—जो धन पिताके घरसे कन्या पिता व भाइयोंके सामने दिया हुआ लावे उसको अध्याह्वनिक अर्थात् लाया हुआ कहते हैं ॥८६॥

प्रीत्या यद्दीयते भूषा श्वश्र्वा वा श्वशुरेण वा।
मुखेक्षणङ्घ्रिग्रहणे प्रीतिदानं स्मृतं बुधैः ॥८७॥

अर्थ—जो धन-वस्त्रादि श्वसुर तथा सासने मुखदिखाई तथा पादग्रहणके समय प्रीतिपूर्वक दिया उसको बुद्धिमान् लोग प्रीतिदान कहते हैं ॥८७॥

आनीतमूढकन्याभिर्द्रव्यभूषांशुकादिकम्।
पितृभ्रातृपतिभ्यश्च स्मृतमौदयिकं बुधैः ॥८८॥

अर्थ—विवाहके पश्चात् पिता, भाई, पतिसे जो धन, भूषण, वस्त्रादि मिले वह औदयिक कहा जाता है ॥८८॥

परिक्रमणकाले यद्धेमरत्नांशुकादिकम् ।
दम्पतीकुलवामाभिरन्वाधेयं स्मृतं बुधैः ॥८९॥

अर्थ—विवाह समयमें अपने पति तथा पतिके कुलकी स्त्रियों (कुटुम्बी स्त्रियों) से जो धन आया हो वह अन्वाधेय है ॥८९॥

एवं पञ्चविधं प्रोक्तं स्त्रीधनं सर्वसम्मतम् ।
न केनापि कदा ग्राह्यं दुर्भिक्षाऽपद्वृषादृते ॥९०॥

अर्थ—इन पाँच प्रकारोंकी सम्पत्ति स्त्री-धन होती है। इसको दुर्भिक्ष, आपत्ति अथवा धर्म कार्यको छोड़कर किसीका लेना उचित नहीं है ॥९०॥

पैतामहधनात्किञ्चिद्दातुं वाञ्छति सप्रजाः ।
भगिनोभागिनेयादिभ्यः पुत्रस्तु निषेधति ॥९१॥

अर्थ—बाबाके द्रव्यमेंसे यदि कोई व्यक्ति अपनी भगिनी या भानजे आदिको कुछ देना चाहे तो उसका पुत्र उसको रोक सकता है ॥९१॥

विना पुत्रानुमत्या वै दातुं शक्तो न वै पिता ।
मृते पितरि पुत्रस्तु ददत्केन निरुध्यते ॥९२॥

अर्थ—पुत्रकी सम्मति बिना पिताको निःसन्देह जायदादके दे डालनेका अधिकार नहीं है, और पिताके मरनेपर पुत्र देता हुआ किससे रोका जा सकता है ? ॥९२॥

गृहीते दत्तके पुत्रो धर्मपत्न्यां प्रजायते ।
स एवोष्णीषबन्धस्य योग्यः स्याद्दत्तकस्तु सः ॥९३॥
चतुर्थांशं प्रदाप्यैव भिन्नः कार्योऽन्यसाक्षितः ।
प्रागेवोष्णीषबन्धे तु जातोऽपि समभाग्भवेत् ॥९४॥

अर्थ—दत्तक पुत्र लेनेके पश्चात् यदि औरस पैदा हो तो वही शिरोपाह बन्धनके योग्य है। दत्तकको चतुर्थ भाग देकर गवाहोंके सम्मुख अलग कर देना चाहिए। यदि औरस पुत्र उत्पन्न होनेसे पूर्व ही शिरोपाह बन्ध गया हो तो दत्तक समान भागका भोक्ता होता है ॥९३-९४॥

पतेरप्रजसो मृत्यौ तद्द्रव्याधिपतिर्वधूः ।
दुहितृप्रेमतः पुत्रं न गृह्णीयात्कदाचन ॥९५॥
न ज्येष्ठदेवरसुता दायभागाधिकारिणः ।
तन्मृतौ तत्सुता मुख्या सर्वद्रव्याधिकारिणी ॥९६॥

अर्थ—मर्दके निःसन्तान मर जानेपर उसकी विधवा उसकी सम्पत्तिकी स्वामिनी होती है। यदि वह अपनी पुत्रीके विशेष प्रेमके कारण कोई लड़का गोद

न ले तो उसके मरनेपर उसके जेठ देवरोंके पुत्र उसके मालिक नहीं हो सकते किन्तु उसकी मुख्य पुत्री ही अधिकारिणी होती है ॥९५-९६॥

नोट—यह मसला वसीअतका है जिसके द्वारा माता अपनी पुत्रीको अपना वारिस नियत करती है। यह वसीअत जबानी किस्मकी है।

तन्मृतौ तत्पतिः स्वामी तन्मृतौ तत्सुतादिकाः।
न पितृभ्रातृतज्जानामधिकारोऽत्र सर्वत्र ॥९७॥

अर्थ—उस पुत्रीके मरनेपर उसका पति उसका वारिस होगा। उसके भी मरनेपर उसके पुत्रादि मालिक होंगे। परन्तु उसके पिताके भाई आदिकी सन्तानका कुछ अधिकार नहीं है ॥९७॥

प्रेते पितरि यत्किञ्चिद्धनं ज्येष्ठकरागतम्।
विद्याध्ययनशीलानां भागस्तत्र यवीसयम् ॥९८॥

अर्थ—पिताके मरनेपर बड़े भाईके हाथ जो द्रव्य आया है उसमें विद्याके पठनमें संलग्न छोटे भाइयोंका भी भाग है ॥९८॥

नोट—यह रक्षा छोटे भाइयोंके गुजाराके निमित्त है जो विद्योपार्जनमें संलग्न हों।

अविद्यानां तु भ्रातॄणां व्यापारेण धनार्जनम्।
पैत्र्यं धनं परित्यज्याऽप्यत्र सर्वे समांशिनः ॥९९॥

अर्थ—विद्या रहित भाइयोंको व्यापारसे धनको उपार्जन करना चाहिए, और पिताके धनको छोड़कर शेष द्रव्यमें सबका समान भाग होना चाहिए ॥९९॥

नोट—पिताके धनसे अभिप्राय पिताके अविभाग योग्य वर्सासे है (देखो आगामी श्लोक)। शेष सम्पत्ति वह है जो विभाग योग्य है।

पितृद्रव्यं न गृह्णीयात्पुत्रेष्वेक उपार्जयेत्।
भुजाभ्यां यन्न भाज्यं स्यादागतं गुणवत्तया ॥१००॥

अर्थ—गुणोंसे एकत्रित किया हुआ अविभाज्य जो पिताका द्रव्य है, उसे सब लड़के बांट नहीं सकते हैं। उसको केवल एक ही लड़का लेगा और वह अपने बाहुबलसे उसकी वृद्धि करेगा ॥१००॥

पत्याङ्गनायै यद्दत्तमलङ्कारादि वा धनम्।
तद्विभाज्यं न दायादैः प्रान्ते नरकभीरुभिः ॥१०१॥

अर्थ—पतिने स्त्रीको जो अलंकारादि अथवा धनादि दिया हो उसका, नरकसे भयभीत दायादों (विभाग लेनेवालों) को विभाग नहीं करना चाहिए ॥१०१॥

येन यत्स्वं खनेर्लब्धं विद्या लब्धमेव च।
मैत्रं स्त्रीपक्षलोकाच्चागतं तद्भुज्यते न कैः ॥१०२॥

अर्थ—जो द्रव्य किसीको खानसे मिला हो, अथवा विद्या द्वारा मिला हो, मित्रसे मिला हो, अथवा स्त्री-पक्षके मनुष्योंसे मिला हो, वह भागके योग्य नहीं है ॥१०२॥

बहुपुत्रेष्वशक्तेषु प्रेते पितरि यद्धनम्।
येन प्राप्तं स्वशक्त्या नो तत्र स्याद्भागकल्पना ॥१०३॥

अर्थ—बहुतसे अशक्त (अयोग्य) पुत्रोंमेंसे पिताके मर जानेपर जो किसीने अपने पौरुषसे धन एकत्रित किया हो उसमें भाग कल्पना नहीं है ॥१०३॥

पित्रा सर्वे यथाद्रव्यं विभक्तास्ते निजेच्छया।
एकत्रीकृत्य तद्द्रव्यं सह कुर्वन्ति जीविकाम् ॥१०४॥
विभजेरन् पुनर्द्रव्यं समांशैर्भ्रातरः स्वयम्।
न तत्र ज्येष्ठांगस्यापि भागः स्याद्विषमो यतः ॥१०५॥

अर्थ—वे पुत्र जिन्हें पिताने कुछ-कुछ द्रव्य देकर अपनी इच्छासे जुदे कर दिये हों और वे जो द्रव्यको इकट्ठा कर साथ मिलकर ही जीविका करते हों अपने आप समान भागसे द्रव्यका विभाग करें। उसमें बड़े पुत्रको अधिक भाग नहीं मिल सकता ॥१०४-१०५॥

जाते विभागे बहुषु पुत्रेष्वेको मृतो यदि।
विभजेरन् समं रिक्थं सभगिन्यः सहोदराः ॥१०६॥

अर्थ—विभाग हो जाने पर बहुत पुत्रोंमेंसे यदि एकका मरण हो जाय तो भाई और बहन उसका समान भाग कर सकते हैं ॥१०६॥

नोट—बहिनको यहाँ पर हिस्सा उसके विवाहके खर्चके लिए दिया गया है, क्योंकि वह वारिस नहीं है।

निह्नुते लोभतो ज्येष्ठो द्रव्यं भ्रातॄन् यवीयसः।
वञ्चते राजदण्ड्यः स्यात् स भागार्हो न जातुचित् ॥१०७॥

अर्थ—लोभके वश होकर ज्येष्ठ भाई द्रव्यको छिपावे और यदि छोटे भाइयोंको ठगे तो राजा द्वारा दण्ड देने योग्य है, तथा वह अपना भाग भी नहीं पा सकता है ॥१०७॥

द्यूतादिव्यसनासक्ताः सर्वे ते भ्रातरो धनम्।
न प्राप्नुवन्ति दण्डयाश्च प्रत्युतो धर्मविच्युताः ॥१०८॥

अर्थ—धर्मको छोड़कर द्यूतादि व्यसनोंमें यदि कोई भाई आसक्त हो जावे तो उसको धन नहीं मिल सकता, प्रत्युत वह दण्डके योग्य है ॥१०८॥

विभागोत्तरजातस्तु पैत्र्यमेव लभेद्धनम् ।
तदल्पं चेद्विवाहं तु कारयन्ति सहोदराः ॥१०९॥

अर्थ—विभागके पश्चात् जो पुत्र उत्पन्न हो वह पिताके भागका द्रव्य ही ले सकता है, अधिक नहीं। यदि वह बहुत छोटा हो तो उसका विवाह उसके भाइयोंको करना चाहिए ॥१०९॥

पुत्रास्याप्रजसो द्रव्यं गृह्णीयात्तद्वधूः स्वयम् ।
तस्यामपि मृतायां तु सुतमाता धनं हरेत् ॥११०॥

अर्थ—स्वपुत्रोत्पत्तिके बिना ही यदि पुत्र मर जाय तो उसके द्रव्यको उसकी स्त्री ले। उसके भी मर जाने पर पुत्रकी माता ले ॥११०॥

ऋणं दत्वाऽवशिष्टं तु विभजेरन् यथाविधिः ।
अन्यथोपाज्यंते द्रव्यं पितृपुत्रैः ससाहसैः ॥१११॥

अर्थ—ऋण देकर जो बचा हो उसका यथाविधि विभाग कर्तव्य है; यदि कुछ न बचे तो पिता और पुत्रोंको साहसपूर्वक कमाना चाहिए ॥१११॥

कूपालङ्कारवासांसि न विभाज्यानि कोविदैः ।
गोधनं विषमं चैव मन्त्रिदूतपुरोहिताः ॥११२॥

अर्थ—कूप, अलङ्कार, वस्त्र, गोधन, तथा अन्य भी मन्त्री दूत, पुरोहितादि विषय व द्रव्योंका विभाग विद्वानोंको करना नहीं चाहिए ॥११२॥

पुत्रश्चेज्जीवतोः पित्रोर्मृतस्तन्महिला वसौ ।
पैतामहे नाधिकृता भर्तृवच्च पतिव्रता ॥११३॥
भर्तृमञ्चकरक्षायां नियता धर्मतत्परा ।
सुतं याचेत श्वश्रूं हि विनयानतमस्तका ॥११४॥

अर्थ—पिता-माताके जीते ही पुत्र मर गया हो तो उसकी सुशीला स्त्रीका पैतामहके धनपर अधिकार नहीं हो सकता, किन्तु पतिव्रता, भर्ताके शयनका रक्षण करती, धर्मतत्पर, विनयसे मस्तक नीचा कर श्वश्रूसे पुत्रकी याचना करे ॥११३—११४॥

नोट—पोतेकी विधवा अपने श्वसुरके पिताके धनकी वारिस नहीं है।

स्वभर्तृद्रव्यं श्वसुरश्वश्रूभ्यां स्वकरे यदा ।
स्थापितं चेन्न शक्ताप्तुं पतिदत्तेऽधिकारिणी ॥११५॥

अर्थ—अपने पतिका द्रव्य भी जो श्वसुर और श्वश्रूको दे दिया गया हो उसे वह नहीं ले सकती; केवल पतिसे लब्ध द्रव्यकी ही वह अधिकारिणी है ॥११५॥

नोट—अभिप्राय उस धनसे जो पतिने अपने माता पिताको दे डाला है, क्योंकि यह वापस नहीं होता है।

प्राप्नुयाद्विधवा पुत्रं चेद्‌गृह्णीयात्तदाज्ञया।
तद्वंशजच्छ स्वलघुं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥११६॥

अर्थ—विधवा स्त्री यदि श्वश्रूकी आज्ञासे कोई लड़का गोद ले तो अपने वंशके, अपनेसे छोटे, सर्वलक्षण संयुक्त, ऐसे पुत्रको ले सकती है ॥११६॥

जिनोत्सवे प्रतिष्ठादौ सौहृदे धर्मकर्मणि।
कुटुम्बपालने शक्ता नान्यथा साऽधिकारिणी ॥११७॥

अर्थ—जिनेन्द्रके उत्सव, प्रतिष्ठादि, जाति सम्बन्धी, धर्म-कर्मादि, कुटुम्ब-पालन आदि कार्योंमें (लड़केकी) विधवा व्यय कर सकती है। दूसरे प्रकारमें अधिकार नहीं है ॥११७॥

नोट—यहाँ संकेत ऐसी विधवा बहूकी ओर है जिसको लड़का गोद लेनेकी आज्ञा उसकी सासने दे दी है। आज्ञाका परिणाम यह है कि सम्पत्ति दादीकी न रहकर पोतेकी हो जाती है। खर्चके बारेमें जो हिदायत कानूनके इस श्लोकमें है उसका सम्बन्ध ऐसे समयसे है जबकि विधवा बहू अपने दत्तक पुत्रकी जात व जायदादकी वलिया (संरक्षिका) उसकी नाबालिगीमें हो।

इति संक्षेपतः प्रोक्तो दायभागविधिर्मयो-
पासकाध्ययनात्सारमुद्‌धृत्य क्लेशहानये ॥११८॥
एवं पठित्वा राज्यादिकर्म यो वा करिष्यति।
लोके प्राप्स्यति सत्कीर्ति परत्राऽप्स्यति सद्‌गतिम् ॥११९॥

अर्थ—इस प्रकार संक्षेपसे उपासकाध्ययनसे सार लेकर क्लेशकी हानिके लिए दायभाग मैंने कहा है। इसे पढ़कर यदि कोई राज्यादि कार्योंको करेगा तो इस लोकमें कीर्ति तथा परलोकमें सद्‌गतिको प्राप्त होगा ॥११८-११९॥

द्वितीय दाय भाग

श्रीवर्द्धमान-नीति

प्रणम्य परया भक्त्या वर्धमानं जिनेश्वरम् ।
प्रजानामुपकाराय दायभागः प्रवक्ष्यते ॥१॥

अर्थ—उत्कृष्ट भक्तिसे श्रीवर्द्धमान जिनेश्वरको नमस्कार कर प्रजाके उपकारके लिए दायभागका स्वरूप कहता हूँ ॥१॥

औरसो निजपत्नीजस्तत्समो दत्तकः स्मृतः ।
इमौ मुख्यौ पुनर्दत्त क्रीतसौतसहोदराः ॥२॥
इमे गौणाश्च विज्ञेया जैनशास्त्रानुसारतः ।
इतरे नैव दायादाः पिण्डदाने कदाचन ॥३॥
उत्पन्ने त्वौरसे पुत्रे चतुर्थांशहराः सुताः ।
सवर्णा असवर्णास्ते भुक्तयाच्छादनभागिनः ॥४॥

अर्थ—निज पत्नीसे उत्पन्न लड़का औरस पुत्र है और इसीकी भाँति दत्तक (अर्थात् दिया हुआ, गोद लिया हुआ) लड़का होता है। यह दोनों पुत्र मुख्य हैं। फिर दत्त, क्रीत, सौत और सहोदर जैन-शास्त्रके अनुसार गौण पुत्र हैं। इनके अतिरिक्त कोई पुत्र दायाद नहीं है, और न पिण्डदान कर सकते हैं (अर्थात् नस्ल नहीं चला सकते हैं)। औरस पुत्रके उत्पन्न होनेपर यदि वह पिताके वर्णकी मातासे उत्पन्न हुआ है (गोदके) पुत्रको चौथाई भाग दिया जाता है। यदि औरस पुत्र अन्य वर्णकी मातासे उत्पन्न हुआ है तो वह केवल रोटी-कपड़ा पाता है ॥२-४॥

नोट—अन्य वर्णसे अभिप्राय यहाँ केवल शूद्राणी स्त्रीसे है।

गृहीते दत्तके पुत्रे धर्मपत्न्यां प्रजायते ।
स एवोष्णीषबन्धस्य योग्यः स्याद्दत्तकस्तु सः ॥५॥
चतुर्थांशं प्रदाप्यैव भिन्नः कार्योऽन्यसाक्षितः ।
प्रागेवोष्णीषबन्धे तु जातोऽपि समभागयुक् ॥६॥

(देखो भद्रबाहुसंहिता श्लो० ९३-९४) ॥५-६॥

असंस्कृतं तु संस्कृत्य भ्रातरो भ्रातरं पुनः ।
शेषं विभज्य गृह्णीयुः समं तत्पैतृकं धनम् ॥७॥

अर्थ—भाइयोंमें जो भाई अविवाहित हो उसका विवाह करके पीछे अवशिष्ट धनका सब भाई समान भाग कर लें ।।७।।

पित्रोरूर्ध्वं भ्रातरस्ते समेत्य वसु पैतृकम् ।
विभजेरन्समं सर्वं जीवतो पितुरिच्छया ।।८।।

(देखो भद्रबाहुसंहिता श्लोक ४) ।।८।।

अनूढा यदि कन्या स्यादेकाबह्वीः सहोदरैः ।
स्वांशात्सर्वे तुरीयांशमेकीकृत्वा विवाहयेत् ।।९।।

(देखो भद्रबाहु संहिता श्लोक १९) ।।९।।

सहोदरैर्निजांबाया भागः सम उदाहृतः ।
साधिकं व्यवहारार्थं मृतौ सर्वेऽशभागिनः ।।१०।।

(देखो भद्रबाहुसंहिता श्लोक २१) ।।१०।।

पत्नीपुत्रौ भ्रातृजाश्च सपिण्डस्तत्सुतासुतः ।
बान्धवो गोत्रजा ज्ञात्या द्रव्येशा ह्युत्तरोत्तरम् ।।११।।
तदभावे नृपो द्रव्यं धर्मकार्ये प्रवर्त्तयेत् ।
निष्पुत्रस्य मृतस्यैव सर्ववर्णेष्वयं क्रमः ।।१२।।

अर्थ—कोई पुरुष मर जाय तो उसके धनके मालिक इस क्रमसे होते हैं—स्त्री, पुत्र, भतीजा, सपिण्ड, पुत्रीका पुत्र, बन्धु, गोत्रज, ज्ञात्का । इन सबके अभावमें राजा उस धनको धर्म-कार्यमें लगा दे । यह नियम सब बच्चोंके लिए है ।।११–१२।।

ऊढपुत्र्यां परेतायामपुत्रायां च तत्पतिः ।
स स्त्रीधनाय द्रव्यस्याधिपतिश्च भवेत्सदा ।।१३।।

(देखो भद्रबाहुसंहिता २९) ।।१३।।

पत्युर्धनहरी पत्नी या स्याच्चेद्वरवर्णिनी ।
सर्वाधिकारं पतिवत् सति पुत्रेऽथवाऽसति ।।१४।।

अर्थ—विधवा स्त्री पतिव्रता हो तो पतिके सम्पूर्ण धनकी स्वामिनी होगी । उसको पतिकी भाँति पूरा अधिकार प्राप्त होता है चाहे लड़का हो या न हो ।।१४।।

पितृद्रव्यादिवस्तूनां मातृसत्त्वे सुतस्य हि ।
सर्वथा नाधिकारोऽस्ति दानविक्रयकर्मणि ।।१५।।

अर्थ—माताके होते हुए दत्तक अथवा आत्मज पुत्रको पिताकी स्थावर जङ्गम वस्तुके दान करने या बेचनेका सर्वथा अधिकार नहीं है ।।१५।।

योऽप्रजा व्याधिनिर्मग्नश्चैकाकी स्त्र्यादिमोहितः ।
स्वकीय व्यवहारार्थं कल्पयेल्लेखपूर्वकम् ॥१६॥
अधिकारिणमन्यं वै ससाक्षि स्त्रीमनोनुगम् ।
कुलद्वयविशुद्धं च धनिनं सर्वसम्मतम् ॥१७॥

अर्थ—संतान रहित अकेला पुरुष व्याधि आदि रोगसे दुःखित होकर स्त्रीके मोहवश (अर्थात् उसके इन्तिजामके लिए) यदि अपने धनके प्रबन्धार्थ किसी प्राणीको प्रबन्धकर्ता बनाना चाहे तो लिखित लेख द्वारा गवाहोंके समक्ष ऐसे प्राणीको नियत कर सकता है कि जो लिखनेवालेकी स्त्रीकी आज्ञा पालनेवाला है, जो जाति और कुलकी अपेक्षा उच्च है, जो धनवान् है और जो सबको मान्य है ॥१६-१७॥

औरसो दत्तको वाऽपि कुर्यात्कर्म्म कुलागतम् ।
विशेषं तु न कुर्याद्वै मातुराज्ञां बिना सुधीः ॥१८॥
शक्तश्चैन्मातृभक्तोऽपि विनयी सत्यवाक्शमी ।
सर्वस्वांतहरो मानी विद्याध्ययनतत्परः ॥१९॥

अर्थ—औरस तथा दत्तक पुत्र माताकी आज्ञाके अनुकूल चलनेवाला, योग्य, शान्तिवान्, सत्यवक्ता, विनयवान्, मातृभक्त, विद्याध्ययन-तत्पर इत्यादि गुण-युक्त हो तो भी कुलागत व्यवहारके अतिरिक्त विशेष कार्य माताकी आज्ञा बिना नहीं कर सकता है ॥१८-१९॥

गृहीतदत्तकः स्वीयं जीवितप्राप्तसंशयः ।
परो वा कृतसल्लेखं दत्वा स्वगृहसाधने ॥२०॥

अर्थ—यदि किसी व्यक्तिने पुत्र गोद लिया है और उसको अपनी जिन्दगीका भरोसा नहीं तो उसको चाहिए कि वह अपने खानदानकी रक्षा की गरजसे लेख-द्वारा किसी व्यक्तिको अपनी जायदादका प्रबन्धकर्ता नियत कर दे ॥२०॥

आपौगंडदशं बन्धुभूपाधिकृतिसाक्षिकम् ।
स्वयं नियोजयेत्सद्यः प्रायाद्भूयः परासुतां ॥२१॥
प्राप्ताधिकारः पुरुषः प्रतिकूले भवेद्यदि ।
मृतपत्नी तदादाय लेखभर्तृकृतं ततः ॥२२॥
स्वयंकुलागतं चान्यनरैः रीतिं प्रचालयत् ।
पतिस्थापितसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥२३॥

बिरादरीके लोगों और राजाके समक्ष दस्तावेज (लेख) लिख देनेके पश्चात् अपनी जायदादकी आमदनी उसके सुपुर्द कर दे फिर यदि वह मर जावे और वह

रक्षक उसकी विधवाके प्रतिकूल हो जावे तो वह विधवा उसको हटाकर उस लेखके अनुसार जायदादका कुलके व्यवहारके अनुकूल प्रबन्ध करे और अपने प्रयत्नसे उसकी रक्षा करे ॥२१-२३॥

तन्मिषेणैव निर्वाहं कुर्यात्सा स्वजनस्य हि ।
कुर्याद्धर्मज्ञातिकृत्ये स्वतूनामधिविक्रये ॥२४॥

अर्थ—उससे अपना निर्वाह करे और अपने कुटुम्बका पालन करे । धर्म्म-कार्य तथा ज्ञाति-कार्योंके लिए विधवा स्त्रीको अपने पतिका धन खर्च करने तथा गिरवी रखने या बेचनेका अधिकार है ॥२४॥

प्रतिकूलो भवेत्पुत्रः पितृभ्यां यदि सर्वथा ।
तत्पित्रादीन्समाहूय बोधयेच्च मृदूक्तितः ॥२५॥
पुनश्चापि स्वयं दर्पाद्दुर्जनोक्त्या हि तादृशः ।
तापयित्वा सुतोद्धातं बन्धुभूषाधिकारिणः ॥२६॥
तदाज्ञां पुनरादाय निष्कास्यो गृहतो ध्रुवम् ।
न तत्पूत्कारसंवादः श्रोतव्यो राजपंचभिः ॥२७॥
पुनश्चान्यशिशुं भर्तुः स्थाने संयोजयेद्वधूः ।
सर्ववर्णेषु पुत्रो वै सुखाय गृह्यते यतः ॥२८॥
विपरीतो भवेद्वत्सः पित्रा निःसार्यते ध्रुवम् ।
विवाहितोऽपि भूपाज्ञापूर्वकं जनसाक्षितः ॥२९॥

अर्थ—दत्तक पुत्र यदि माता-पितासे प्रतिकूल हो जाय तो उसके असली माता-पिताको बुलाकर उसको नर्मीके साथ समझावे ॥२५॥

यदि फिर भी वह दुष्टता अथवा गरूरके कारण न समझे तो उससे नाता तोड़कर भाई-बन्धुओं और राजा और राजकर्मचारियोंकी आज्ञा लेकर उसको घरसे निकाल दे । फिर राजा और पंच लोग उसकी फरयाद नहीं सुन सकते । इसके पश्चात् वह और (दत्तक पुत्रकी माता) दूसरा पुत्र गोद ले सकती है । क्योंकि सब वर्णोंमें पुत्र सुखके लिए ही लिया जाता है ॥२६-२८॥

गोदका पुत्र यदि प्रतिकूल हो जाय तो, चाहे वह विवाहित हो, चाहे वह अविवाहित हो, राजा और बन्धुजनकी साक्षीसे निःसन्देह पिता उसको घरसे निकाल सकता है ॥२९॥

दत्तपुत्रं गृहीत्वा यः स्वाधिकारं प्रदत्तवान् ।
जङ्गमे स्थावरे वाऽपि स्वातुं स्वं धर्म्मवर्त्मनि ॥३०॥

(देखो भद्रबाहुसंहिता ५५) ॥३०॥

पुनः सो दत्तकः काललब्धिं प्राप्य मृतो यदि ।
भर्तृद्रव्यादि यत्नेन रक्षयेत् स्तैन्यकर्म्मतः ॥३१॥
(देखो भद्रबाहुसंहिता ५६) ॥३१॥

न तत्पदे कुमारोऽन्यः स्थापनीयो भवेत्पुनः ।
प्रेतेऽनूढे न पुत्रस्याज्ञाऽस्ति श्रीजैनशासने ॥३२॥
(देखो भद्रबाहुसंहिता ५७) ॥३२॥

सुतासुतसुतात्मीयभागिनेयेभ्य इच्छया ।
देयाद्धर्मेऽपि जामात्रेऽन्यस्मै वा ज्ञातिभोजने ॥३३॥
(देखो भद्रबाहुसंहिता ५८) ॥३३॥

स्वयं निजास्पदे पुत्रं स्थापयेच्चेन्मृतप्रजा ।
युक्तं परमनूढस्य पदे स्थापयितुं न हि ॥३४॥
(देखो भद्रबाहुसंहिता ५९) ॥३४॥

श्वशुरस्थापिते द्रव्ये श्वश्रूसत्वेऽथवा वधूः ।
नाधिकारमवाप्नोति भुक्त्याच्छादनमंतरा ॥३५॥
दत्तगृहादिकं कार्यं सर्वं श्वश्रूमनोनुगम् ।
करणीयं सदा वध्वा श्वश्रूमातृसमा यतः ॥३६॥

अर्थ—सासके होते हुए मृत पुत्रकी वधूको श्वशुरके द्रव्यमें भोजन-वस्त्रादिकके व्यतिरिक्त और कुछ अधिकार नहीं है। पुत्रको गोद लेकर उसको उचित है कि वह सब कार्य सासकी आज्ञाके अनुकूल करे, क्योंकि सास माता समान होती है ॥३५-३६॥

पितृद्रव्याविनाशेन यदन्यत्स्वयमर्जितम् ।
मैत्रमौद्वाहिकं चैवान्यद्भ्रातॄणां न तद्भवेत् ॥३७॥
पितृक्रमागतं द्रव्यं हृतमप्यानयेत्परैः ।
दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विधया लब्धमेव च ॥३८॥

अर्थ—अनेक भाइयोंमेंसे एक भाई पिताके द्रव्यको विनाश न करता हुआ स्वयं चाकरी, युद्ध विद्या द्वारा धन उपार्जन करे वा विवाहमें या मित्रसे पावे अथवा पिताके समयका डूबा हुआ धन निज पराक्रमसे निकाले उसमें किसीका कुछ भाग न होगा ॥३७-३८॥

विवाहकाले पतिना पितृपितृव्यभ्रातृभिः ।
मात्रा वृद्धभगिन्या वा पितृश्वस्रा यदर्पितम् ॥३९॥
वस्त्रभूषणपात्रादि तत्सर्वं स्त्रीधनं मतम् ।
तत्तु पञ्चविधं प्रोक्तं विवाहसमयदिनम् ॥४०॥

अर्थ—विवाहके समय पति तथा पतिके पिता तथा स्वपिता चाचा, भाई, माता, वृद्ध भगिनी अथवा बुआने वस्त्र-आभूषण पात्रादिक जो दिया वह सब स्त्री-धन अध्यग्नि है। यह पाँच प्रकारका हता है। विवाहके दिनका दिया होता है ॥३९-४०॥

पितृगृहात्पुनर्नीत कन्याया भूषणादिकम्।
अध्याह्वनिकं प्रोक्तं भ्रातृबन्धुसमक्षकम् ॥४१॥

अर्थ—जो आभूषण आदि पिताके घरसे कन्या भाई-बन्धुजनके सन्मुख लावे वह अध्याह्वनिक कहलाता है ॥४१॥

दत्तं प्रीत्या च यत्श्वश्वा भूषणादि श्वशुरेण वा।
मुखेक्षणांघ्रिग्रहणे प्रीतिदानं तदुच्यते ॥४२॥

अर्थ—सास ससुरने जो कुछ मुखदिखाई अथवा पाँव पड़नेके समय प्रीतिपूर्वक दिया हो वह प्रीतिदान स्त्रीधन है ॥४२॥

ऊढया कन्यया चैवं यत्तु पितृगृहात्तथा।
भ्रातुः सकाशादादत्तं धनमौदयिकं स्मृतम् ॥४३॥

अर्थ—विवाहके पीछे माता पिताके रिश्तेदारोंसे जो कुछ मिला हो वह औदयिक है ॥४३॥

विवाहे सति यद्दत्तमंशुकं भूषणादिकम्।
कन्याभर्तृकुलस्त्रीभिरन्वाधेय तदुच्यते ॥४४॥

अर्थ—जो कुछ गहना इत्यादि पतिके कुटुम्बी स्त्रियोंसे विवाहके समय प्राप्त हुआ हो वह अन्वाधेय कहलाता है ॥४४॥

एवं पञ्चविधं प्रोक्तं स्त्रीधनं सर्वसम्मतम्।
न केनापि कदा ग्राह्यं दुर्भिक्षाऽपद्वृषादृते ॥४५॥

अर्थ—यह पाँच प्रकारका स्त्रीधन है। इसको दुर्भिक्ष, कड़ी आपत्तिके समय अथवा धर्म-कार्यके अतिरिक्त कोई नहीं ले सकता है ॥४५॥

दुर्भिक्षे धर्म्मकार्ये च व्याधौ प्रतिरोधके।
गृही स्त्रीधनं भर्त्ता न स्त्रियै दातुमर्हति ॥४६॥

अर्थ—दुर्भिक्षमें, धर्म-कार्यमें, रोगकी दशामें, (व्यापार आदिकी) बाधाओंके दूर करनेके लिए यदि भर्ता स्त्रीधनको व्यय कर दे तो उसको लौटानेकी आवश्यकता नहीं ॥४६॥

पित्रोः सत्वे न शक्तः स्यात्स्थावरं जंगमं तथा।
विविक्रयं ग्रहीतुं वा कर्तुं पैतामहं च सः ॥४७॥

(देखो भद्रबाहुसंहिता ६०) ॥४७॥

मुक्त्युपायोद्यतश्चैको विभक्तेषु च भ्रातृषु ।
स्त्रीधनं तु परित्यज्य विभजेरन्समं धनम् ॥४८॥

अर्थ—यदि बांटके पूर्व भाइयोंमेंसे कोई भाई साधु हो गया है तो स्त्रीधनको छोड़कर और सब द्रव्यके समान भाग लगाये जावेंगे ॥४८॥

अप्रजाश्चेत्स्वद्रव्याद्यद्भगिनीपुत्रितत्सुतात् ।
मातृबंधुजनांश्चैव तथा स्त्रीपक्षजानपि ॥४९॥
विभक्तादविभक्ताद्धि द्रव्यात्किञ्चिच्च दित्सति ।
तद्भ्रातरो निषेद्धारो भवेयुरतिकोपिताः ॥५०॥

अर्थ—यदि किसी व्यक्तिके पुत्र न हो और वह अपनी सम्पत्तिको अपनी बहन या बेटी या उनके पुत्रोंको देना चाहे या माता अथवा स्त्रीके कुटुम्बके लोगोंको देना चाहे तो चाहे वह सम्पत्ति विभक्त हो अथवा अविभक्त हो उसके भाई उसमें उज्र कर सकते हैं, यदि वह उससे अति असंतुष्ट हो ॥४९–५०॥

यस्यैतेषु न कोऽप्यस्ति स द्रव्यं च यथेच्छया ।
सुपथे कुपथे वापि दित्सन्वध्वा निवार्यते ॥५१॥

अर्थ—यदि किसीके भाई न हों तो उसकी स्त्री भी उसको जायदादके दूर करते समय, चाहे वह अच्छे कार्यके लिए हो या बुरेके लिए, रोक सकती है ॥५१॥

येषां विभक्तद्रव्याणां मृते ज्येष्ठे कनिष्ठके ।
भ्रातरस्तत्सुताश्चैव सोदरास्तत्समांशिनः ॥५२॥

अर्थ—बांटके पश्चात् यदि अनेक भाइयोंमेंसे बड़ा छोटा कोई एक मर जाय तो उसका धन उसके शेष सब भाई वा भाइयोंके पुत्र समान भागमें बांट लें ॥५२॥

पंगुरंधश्चिकित्स्यश्च पतितक्लीबरोगिणः ।
जडोन्मत्तौ च त्रस्तांगः पोषणीयो हि भ्रातृभिः ॥५३॥

अर्थ—लँगड़े, अन्धे, रोगी, नपुंसक, पागल, अङ्गहीन भाईका पालन-पोषण शेष भाइयोंको करना चाहिए ॥५३॥

पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत् ।
न तं भजेरन्दायादाः भजमानाः पतन्ति ते ॥५४॥

अर्थ—पतिके होते हुए जो स्त्री जितने आभूषण धारण करती रहती है उनकी बांट नहीं होता है । अगर कोई उसकी भी बांट करें तो वे नीच समझें जावेंगे ॥५४॥

स्वभर्तृद्रव्यं श्वशुरश्वश्रूभ्यां त्वकरे यदा।
स्थापितं चेन्न शक्तासं पतिदत्तेऽधिकारिणी ॥५५॥
प्राप्नुयाद्विधवा पुत्रं चेद्गृह्णीयात्तदाज्ञया।
तद्वंशजं च स्वलघुं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥५६॥

(देखो भद्रबाहु संहिता ११५-११६) ॥५५-५६॥

राजा नि स्वामिकं रिक्थं मात्र्यब्दं सुनिधापयेत्।
स्वाम्यासुतत्रशक्तस्ततपरस्तु नृपः प्रभुः ॥५७॥

अर्थ—जिस धनका कोई स्वामी निश्चय न हो उसको राजा तीन वर्ष तक सुरक्षित रक्खे; (यदि उस समय भी) कोई अधिकारी न हो तो उसको राजा स्वयं ग्रहण करे ॥५७॥

इन्द्रनन्दि जिनसंहिता

पणमिय वीर जिणेंदं णाउण पुराकयं महाधम्म ।
सउवासुज्झयणग दायविभागं समासदो वोत्थे ॥१॥

अर्थ—श्री महावीर स्वामी (वर्द्धमान जिनेन्द्र) को नमस्कार करके और उपासकाध्ययनसे प्रथम कहा हुआ धर्म जानके उसीके अनुकूल संक्षेपसे मैं दायभाग कहूँगा ॥१॥

पुत्तो पित्त धणेंहिं ववहारे जं जहाय कप्पेई ।
पोतो दायविभागो अप्पडि बंहोस पडिवं हो ॥२॥

अर्थ—पुत्र पिताके धनको व्यवहारसे इच्छानुसार बरतता है । पोता उसको प्राप्त करता है चाहे वह अप्रतिबन्ध हो चाहे सप्रतिबन्ध ॥२॥

जीवदु भत्ता जं धणु णिय भज्जं सं पडुव्व सं दिण्णं ।
भुंजीव थावरं विणु जहेत्थु सातस्स भोयरिहि ॥३॥

अर्थ—और जो कि स्वामी (पति) ने अपने जीते स्वभार्या (निज स्त्री) को जंगम धन (माल मनकूला) प्रेमसे दिया हो वह उसको इच्छानुसार भोग सकती है, परन्तु स्थावर जायदादको नहीं ॥३॥

रयण धण धण्ण जाई सव्वस्स हवे पदू पिदा मुक्खो ।
थावर धणस्स सव्वस्स इत्थि पिदा पिदा महाणावि ॥४॥

अर्थ—सर्व रत्न, मवेशी, धान्य आदिका स्वामी मुख्य पिता है, परन्तु सम्पूर्ण स्थावर धनका स्वामी पिता या पितामह नहीं हो सकता ॥४॥

संदे पितामहे जे थावर वत्थूण कोवि संदिट्ठूं ।
जं आभरणं वत्थं जहेत्थु तं विभायरिहा ॥५॥

अर्थ—पितामह (दादा या बाबा) की जिन्दगीमें स्थावर धनको कोई नहीं ले सकता । परन्तु सब लोग अपने अपने आभरण वस्त्र उसमेंसे यथायोग्य पावेंगे ॥५॥

पुत्ताभावेपि पिदा उवाजियं जं धणं त्वविक्केदुं ।
सक्को णावि यदुपदंवा थावर धणं तहा णेयं ॥६॥

अर्थ—पिताने पुत्रके जन्मसे प्रथम भी जो स्थावर द्रव्य स्वयं उपार्जन किया हो उसको भी वह बेंच नहीं सकता है ॥६॥

जादा वा वि अजादा बाला अणाणिणो वा पिसुणा वा।
इत्थ कुडुम्बवग्गो जत्तायां धम्म किचाम्म तजणे ॥७॥
एयो विवविकयं वा कुज्जादाणं हि थावर सुवत्थु।
माता पिदा हु भावय जेट्ठं भाय गदुगं पुणो अण्णो ॥८॥
सव्वे सम सग्गा हुय तण्ह कलहो नसं होई।
मादा सुदव्वछयावा विग्गा भागं सु भाय णामितं ॥९॥
गिणूहादि लंबडोविहु बुत्थो रुग्नोरू गयछहो कामी।
दूदो वेस्सासत्तो गिण्हइ भायं जहोचियं तथ्थ ॥१०॥

अर्थ—जात तथा अजात पुत्रों, नाबालिग और अयोग्य व्यक्तियोंके होते हुए कोई भी यात्रा, धर्म-कृत्य, मित्र जिनके वास्ते स्थावर धनको विक्रय अथवा दे नहीं सकता है। माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता और अन्य कुटुम्बियों अर्थात् दायादोंकी सम्मतिसे विक्रय कर सकते हैं। इस तरहसे झगड़े नहीं होंगे। यदि माता स्वेच्छासे विभाग करे तो सब उचित भाग पाते हैं।

यदि कोई व्यक्ति दुष्ट है या असाध्य रोगका रोगी है अथवा कोई वांछा रहित, कामी, द्यूत (जुवारी), वेश्यासक्त है तो वह अपनी जरूरत भरके लिए भाग पावेगा ॥७–१०॥

अन्नय सव्वं समंसा सवंसिया अंगणाहु संकुज्जा।
जणये णणो विभाऊ अरम्मदे कज्जये ककाकुत्थ ॥११॥
जइचेदु करिज्ज तहा अपभाणं होइ सब्बत्थ।
सत्त विसणो सेवी विसयी कुट्टो हु वादि उ विमुहो ॥१२॥
गुरु मत्थय विमुहो विय अहियारी णेव रारि सो होइ।
जिट्ठो गिण्हेइ धणं जं बिहुणिय जणय तज्जणय जण्णं ॥१३॥
रक्खेइ तं कुडंग्गे जह पितरौ तह समग्गाई।
उठाहु जादुहिदरो णिय णिय मायं स धणस्स मायरिहा ॥१४॥
तहभावे तस्स सुया तहभावे णिय सु उ बाबि।
अविभत्त विभत्त धण मुक्खे सा होइ भामिणी तत्थ ॥१५॥

अर्थ—सब शेष पुत्र समान भाग लें और धर्मभार्या भी पुत्रोंके समान भाग लें; इस प्रकार (भाग) उचित है। (इसके विपरीत) अन्याय या किसी पृथक् अभिप्रायसे भी विभाग नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा विभाग किया गया है, तो वह सब जगह अनुचित ठहरेगा। जो पुत्र सप्त कुव्यसनासक्त, विषयी, कुष्ठी, अप्रिय गुरु विमुख हो वह विभागका अधिकारी न होगा। ज्येष्ठ पुत्र पिता व पितामहका विर्सा पाता है। जिस प्रकारसे माता-पिता कुटुम्बकी रक्षा करते हैं, वैसे ही ज्येष्ठ

पुत्रको करनी चाहिये; और सब परिवार भी उसको वैसा ही माने। यदि कोई विवाहिता पुत्री हो तो वह अपनी माताके धनकी अधिकारिणी होगी। यदि उसका (पुत्रीका) अभाव हो तो उसका पुत्र, उसका भी अभाव हो तो स्वयं अपना पुत्र अधिकारी होगा। जो धन बँटा हो या न बँटा हो उस धनकी मुख्य अधिकारिणी धर्मभार्या होती है ॥११–१५॥

भत्तरि णट्ठडे विमदे बायाइ सुरुग्ग गहले वा।
खेतं बत्थु धणं वा धणु दुपय चढुपयं चावि ॥१६॥
जेट्ठा भायरिहा सा सा या कुटुम्ब सुपालेई।
पुत्रकुडुंबजो बा मज्जोलाः दुसुसंकिउ बण्णो ॥१७॥
तहवि अभावे दोहिद तस्स अहावे हि गोदीय।
तस्स अहावे देउर सतबारिस प्प माणयं खेयं ॥१८॥

अर्थ—जब कोई मनुष्य लापता हो जाय या मर जाय या वातादि रोगसे ग्रस्त (बावला) हो जाय तब क्षेत्र, मकान, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पदकी मालिक उसकी ज्येष्ठ भार्या, जो कुटुम्बका पालन करेगी, होगी। उसके अभावमें पुत्र, फिर सवर्ण माता-पितासे उत्पन्न भतीजा, इनके भी अभावमें दोहिता, उसके अभावमें गोत्री, (यह भी नहीं तो) भर्ताका छोटा भाई सात वर्षकी वयका ॥१७–१८॥

नोट—भर्ताके सात वर्षकी उम्रके छोटे भाईका भाव ऐसे बच्चेसे है जो पतिके छोटे भाईके सदृश है और जिसको मृतक पुत्रकी वधू दत्तक बनावे ॥

बूढं वा अब्बूढे गिणाहिया पंचजण सक्खी।
जो एगुद्धरेहिय कमदो भूभिदु पुब्बणट्ठाई ॥१९॥
तुरियं भायं दिण्णय लहदिय अण्णोहु सब्बस्स।
णिय जणय धण ज बिहु णियबदब्बमघादए इतं इब्बं ॥२०॥
दायादेउ ण दिज्जई विज्जालद्धं धणं जंहि।
जइ दिण्ण धणं जं बिहु भूसणवत्थादियं व जं अण्णं ॥२१॥

अर्थ—विवाहित हो अथवा अविवाहित कैसा ही हो उसको पञ्चजनोंकी साक्षीसे (गोद) लेना चाहिए। जो व्यक्ति पूर्व गई हुई जमीनको फिर अपने पराक्रमसे प्राप्त करे तो उसको उसका चतुर्थांश मिलेगा। शेष और दायाद पावेंगे। पिताके द्रव्यको निज द्रव्य समझके, और बिदून उसको बाधा पहुँचाये या कम किये, जो रक्षाकर बचा ले ऐसी सम्पतिको अन्य दायादोंको न दे; और जो विद्यासे धन उपार्जन करे तथा जो निजको मिला हो अथवा आभूषण-वस्त्रादि और इसी प्रकारकी और वस्तुओंको भी न दे ॥१९–२१॥

गिण्हेदि ण दायादा पडति णरये ण हा चावि ।
णियकारिय कूबाइय भूषण वत्थुय धणोवि ॥२२॥
णिय एवहि होई यहू अण्णेये तस्स दायदा णोवि ।
पोयाहु पितदब्बं णिय यं चउवज्जियं तहा णेयं ॥२३॥

अर्थ—उपर्युक्त धनको और कोई दायाद नहीं ले सकता, जो लेगा वह नरकमें पड़ेगा । और जो किसीने स्वयं कूप, भूषण, वस्त्र बनाया हो और गोधन तथा इसी तरहकी अन्य सम्पत्ति जो किसीने प्राप्त की हो वह स्वयं उसीकी होती है । उसमें कोई भागी नही होते हैं । इसी तरहसे समझ लेना चाहिए कि पोतेने पिताका जो द्रव्य फिर प्राप्त किया हो उसका अथवा अपनी स्वयं पैदा की हुई जायदादका वही मालिक होता है ॥२२–२३॥

णिय पिउमहे जे दब्बे भाउजण णीछिया सुहवे ।
धण्णं जं अविहतं तहेव तं समं समं णेयं ॥२४॥

अर्थ—पितामह के द्रव्यका विभाग माता और भाइयोंकी आज्ञाके अनुकूल होता है । जो धन बँटा नहीं है वह इसी तौरसे समानांश बाँटने योग्य है ॥२४॥

धाइणिवं ट्ठावर सामित दुण्ह लत्य सरसम्मि ।
जोद सुद बिमाउ णेउहि सवणजणिय बहु सरिसो ॥२५॥

अर्थ—पृथ्वी (और पितामहके और स्थावर धन) में पिता व पुत्रका अधिकार समान है; और यदि भाग ले चुकनेके पश्चात् सवर्णा भार्याका पुत्र उत्पन्न हो तो वह भी पुनः सम्पूर्ण भ्राताओंके समान भाग लेनेका अधिकारी होगा ॥२५॥

पुब्वं पच्छाजादे विभक्त जो सब्ब संगाही ।
जीवदु पिच्चधणोवि हु जाम्हि जहातहादिण्णं ॥२६॥
णेह विसादो तत्थहु गिण्ह जहुणावरेण एतत्थ ।
पंचत्तगये जणये भाया समभाइणी हवेतत्थ ॥२७॥

अर्थ—पुत्र उत्पन्न होनेपर, उस जायदादमें जो उसके पैदा होनेसे पहले बँट गई है हकदार हो जाता है । अपने जीते जी पिताने चाहे जिस तरहपर अपना धन चाहे जिस किसीको दे दिया हो, उसमें उज्र करना अनुचित है, और वह किसीको नहीं लेना चाहिए । पिताके पाँचवें आश्रमको चले जानेपर, अर्थात् मर जानेपर, माता भी जायदादमें बराबरकी हकदार हो जाती है ॥२६–२७॥

भाया भयणी दोबिय संभज्जा दायभाग दो सरिसा ।
भायरि सु पहाडेबिय लहु भायर भायणी हु संरक्खा ॥२८॥

अर्थ—भाई-बहिन दोनों जायदादको समान बाँट लें। बड़े भाईको उचित है कि छोटे भाई और बहिनकी रक्षा करे ॥२८॥

दत्ता दाण विसेसं भइणीउ पारिणे दब्बा।
दो पुत्ता एय सुदा धणं विभज्जंति हा तहाभाये ॥२९॥
सेसं जेट्ठो लादिहु जहा रिण णो तहा गिण्हे।
सुद्दाहु वंभजा जे चउ तिय दुगुणप्पभाइणो णेया ॥३०॥

र्थ—दहेज देकर बहिनका विवाह कर देना चाहिए। अगर दो लड़के और एक लड़की हो तो सम्पत्तिके तीन भाग करने चाहिए। उससे जो बचे उसको बड़ा भाई ले, जिससे ऋण न लेना पड़े। यह जान लेना चाहिए कि ब्राह्मण पिताके पुत्र, शूद्राणी माताकी सन्तानके अतिरिक्त जो ब्राह्मणी, क्षत्राणी, वैश्याणी माताओंसे उत्पन्न हुए हों वह क्रमशः ४, ३, २ भागके अधिकारी होते हैं ॥२९–३०॥

खत्तिय सुद्दा णेया तिय दुगुणाप्प भाइणो णेया।
सुद्दजु सुद्दा दुगुदुग भायरिहा वैस्स सुद्दजा इक्कं ॥३१॥

अर्थ—क्षत्रिय (पिता)के पुत्र ३; वैश्य (पिता)के २; और शूद्रके एक भागके अधिकारी, माताके वर्णकी अपेक्षा[१]से, होंगे ॥३१॥

तिय वण्णज जादोविहु सुद्दो वित्तं ण लहइ सब्बत्थ।
उरस णिये पयणीउ दत्तो भाइज्ज दोहिया पुत्तो ॥३२॥
गोदज वा खेतुब्भव पुत्तारा देहु दायादा।
कण्णीणोपच्छण्णे पच्छण्णो वाणो पुणब्भवोथुत्तो ॥३३॥

अर्थ—चाहे तीनों वर्णोंके पितासे ही क्यों न उत्पन्न हों तो भी शूद्राणी माताके पुत्र पिताकी सम्पत्तिको सर्वथा ही नहीं पाते हैं। औरस (जो धर्मपत्नीसे उत्पन्न हुआ हो), गोद लिया हुआ पुत्र, भतीजा, दोहिता, गोत्रज, क्षेत्रज (जो उसी कुलमें पैदा हुआ हो), यह लड़के निसन्देह दायाद हैं। कुँवारीका पुत्र, निज

---

१. इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि क्षत्रिय तीन वर्णोंमें विवाह कर सकता है अथवा अपने वर्णमें और और अन्य नीचके वर्णोंमें, वैश्य दो वर्णोंमें और शूद्र एक ही वर्णमें अर्थात् अपने ही वर्णमें। यह विदित होता है कि इस श्लोकका और इससे पहिलेके श्लोकोंका शायद यही अर्थ हो कि क्षत्रिय पिताकी भिन्न-भिन्न वर्णोंकी स्त्रियोंकी औलाद (शूद्राणीके लड़कोंको छोड़कर) क्रमशः ३ और २ भाग पावेगी और वैश्यके पुत्र समान (२ और २) भाग पावेंगे (शूद्राणीका पुत्र कुछ नहीं पायेगा); और शूद्रके लड़के एक-एक भाग अपने पिताके हिस्सेमें पावेंगे।

पत्नीका पुत्र (जो छिपी रीतिसे पैदा हुआ हो, या जो खुले छिनाले उत्पन्न हुआ हो), कृत्रिम, जो लेकर पाला गया हो, ऐसी औरतका पुत्र जिसका दूसरा विवाह हुआ है, और छोड़ दिया हुआ बच्चा जो पुत्रकी भाँति रखा गया हो ॥३२-३३॥

ने पुत्ता पुत्तकप्पा दायादा पिण्डदाणेवं ।
सुद्दा उ दासीं विहु जादो णिय जणय इच्छिया भागो ॥३४॥

अर्थ—यह पुत्र तुल्य हैं। परन्तु यह दायाद या पिण्डदाता नहीं हैं। शूद्रा दासीसे जो पुत्र उत्पन्न हो उसका पिताके धनमें पिताकी इच्छानुसार ही भाग होता है ॥३४॥

पित्तु गये परलोये अद्धं अद्धं सहृणहुते सब्बे ।
दायादा के के विहु पठमं भज्जा तदो दुपुत्तोहि ॥३५॥

अर्थ—यदि पिता मर जाय तो वह (दासीपुत्र) आधा भाग लेगा। और दायाद कौन हो सकते हैं? प्रथम धर्मपत्नी, फिर पुत्र ॥३५॥

पच्छादु भायराते पच्छातह तस्सुदाणेया ।
पच्छा तहा स पिंडा तहा सुपुत्ती तहा सुतज्जेय ॥३६॥

अर्थ—फिर भाई, फिर भतीजे, फिर सपिण्ड, तत्पश्चात् पुत्री और उसके बाद पुत्रीका पुत्र ॥३६॥

अण्णो इकोविबंधुवि सुग्गोयेजा जाइ जो हु दब्वेण ।
तस्सवि लोय पमाणं रायपमाणं हवेइ जं पत्तं ॥३७॥

अर्थ—इनके पश्चात् कोई बन्धु, फिर कोई गोत्रीय, फिर कोई जातीय मृतकके धनका स्वामी, लोक अथवा राज्य-नियमानुकूलसे हो सकता है ॥३७॥

दत्ते तम्मिण कलहो सुसिच्छदो धम्मसूरिहिं णिच्चं ।
दिण्णम परायपेत्त ससरिकयं णो केवेइ कलहो य ॥३८॥

अर्थ—उक्त प्रकार दाय अधिकारमें कलह न होगा; ऐसा धर्माचार्योंने सदाके लिये निश्चय किया है। राज्यनीति व लोक-व्यवहारके अनुसार दायके निर्णय करनेमें विवाद न होगा ॥३८॥

सब्बं सब्बस मदं जहा तहा दाय भायम्मि ।
सब्बेसिं हि अहावे पुल्लणिवो वित्त वंभ विणा ॥३९॥

अर्थ—बांट इस प्रकारसे करनी चाहिए जो सबको स्वीकृत हो और जो सबके फायदेके लिए हो। इन (उपर्युक्त) दायादोंके अभावमें धनका स्वामी राजा होगा, परन्तु ब्राह्मणके धनका नहीं ॥३९॥

बंभस्स जं धणं विहु तस्सहु भज्जाहि विंभणा अण्णे ।
जिट्ठठे गयेहु मायरि तहिय कणिट्ठे विमत्त स दब्बे ॥४०॥

अर्थ—यह निश्चय है कि ब्राह्मणके धनकी अधिकारिणी उसकी स्त्री होगी और उसके अभावमें कोई ब्राह्मण ही स्वामी होगा। और ज्येष्ठ भाईकी मृत्युपर उसके छोटे भाई उसका धन बांट लें।॥४०॥

सोयरबंधु बग्गो गेह्लदु तेसिं धणं कमसो ।
पडिदो पंगू वहिरो उम्मत्तो संद कुज्ज अंधो य ॥४१॥
बिसई जडो य कोही गूँगो रुग्गो य पयडूलो ।
विसणी अभक्खभोई एदेसिं भाग जुग्गदो णत्थि ॥४२॥
भुत्ति बसण जणिता परंदु जस्सा विकस्सावि ।
मंतो सहाई शुद्धा एदेसिं भाग जोगदा अत्थि ॥४३॥

अर्थ—यदि उसके कोई भाई-बन्धुजन (वारिस) नहीं हैं तो उसके दायाद उपर्युक्त क्रमानुसार होंगे। पतित, पंगु, बधिर, उन्मत्त, नपुंसक, कुबड़ा, अन्धा, विषयी, पागल, क्रोधी, गूंगा, रोगी, बैरी, सप्तकुव्यसनी, अभक्ष्यभोजी, ऐसा व्यक्ति भाग नहीं पाता। भोजनवस्त्रसे उनका भरण-पोषण करना चाहिए। और यदि वे मन्त्रादिसे अच्छे हो जायें तो उनमें दाय-अधिकारकी योग्यता होती है ॥४१-४३॥

एदसिं बि सुदा अवि दुहिरा जो सब्ब गुण सुद्धोय ।
होइहु भाय सु जुग्गा णियधम्मरदा जणाहु सब्बेसिं ॥४४॥

अर्थ—यदि यह (अयोग्य ब्यक्ति) अच्छे न हो सकें तो उनके दोहितेको जो सर्वगुणशुद्ध हों (करीबी दायादोंके अभावमें) उनका हिस्सा मिलेगा। यह समझ लेना चाहिए कि इन सबको धर्ममें संलग्न रहना चाहिए ॥४४॥

जहकालं जहखेतं जहाबिहिं तेसिं समभाऊ ।
बिबरीया णिव्वस्सा पडिउलाये तहेव वोढव्वा ॥४५॥

अर्थ—धनका भाग यथाकाल, यथाक्षेत्र, नियमानुकूल समभागमें कर देना चाहिए। जो सर्वथा सद्व्यवहारके प्रतिकूल चले वह भागका अधिकारी न होगा, (और), जो माता-पिताके विरोधी हैं वह भी दायके हकदार न होंगे ॥४५॥

पुब्बहु तहा सुद कमसो भायस्स भाइणो होई ।
इत्थिय धण खु दिण्णं पाणिगहणस्स कालये सब्बं ॥४६॥

अर्थ—पूर्व स्त्री, फिर पुत्र, यह क्रमशः दायके भागी होंगे। जो विवाहके समय मिले वह सब स्त्रीधन है ॥४६॥

माया पिया भयिष्णा पिच्चसुसायेहिं संदिण्णं ।
भूसण वत्थ हयादिय सब्बं खलु जाण इत्थिधणं ॥४७॥

पत्नीका पुत्र (जो छिपी रीतिसे पैदा हुआ हो, या जो खुले छिनाले उत्पन्न हुआ हो), कृत्रिम, जो लेकर पाला गया हो, ऐसी औरतका पुत्र जिसका दूसरा विवाह हुआ है, और छोड़ दिया हुआ बच्चा जो पुत्रकी भाँवि रखा गया हो ॥३२-३३॥

ने पुत्ता पुत्तकप्पा दायादा पिण्डदाणेवं ।
सुद्दा उ दासीं विहु जादो णिय जणय इच्छिया भागो ॥३४॥

अर्थ—यह पुत्र तुल्य हैं। परन्तु यह दायाद या पिण्डदाता नहीं हैं। शूद्रा दासीसे जो पुत्र उत्पन्न हो उसका पिताके धनमें पिताकी इच्छानुसार ही भाग होता है ॥३४॥

पित्तु गये परलोये अद्धं अद्धं सहणहुते सब्बे ।
दायादा के के विहु पठमं भज्जा तदो दुपुत्तोहि ॥३५॥

अर्थ—यदि पिता मर जाय तो वह (दासीपुत्र) आधा भाग लेगा। और दायाद कौन हो सकते हैं ? प्रथम धर्मपत्नी, फिर पुत्र ॥३५॥

पच्छादु भायराते पच्छातह तस्सुदाणेया ।
पच्छा तहा स पिंडा तहा सुपुत्ती तहा सुतज्जेय ॥३६॥

अर्थ—फिर भाई, फिर भतीजे, फिर सपिण्ड, तत्पश्चात् पुत्री और उसके बाद पुत्रीका पुत्र ॥३६॥

अण्णो इकोविबंधुवि सुग्गोयेजा जाइ जो हु दब्वेण ।
तस्सवि लोय पमाणं रायपमाणं हवेइ जं पत्तं ॥३७॥

अर्थ—इनके पश्चात् कोई बन्धु, फिर कोई गोत्रीय, फिर कोई जातीय मृतकके धनका स्वामी, लोक अथवा राज्य-नियमानुकूलसे हो सकता है ॥३७॥

दत्ते तम्मिण कलहो सुसिच्छदो धम्मसूरिहिं णिच्चं ।
दिण्णम परायपेत्त ससरिकयं णो केवेइ कलहो य ॥३८॥

अर्थ—उक्त प्रकार दाय अधिकारमें कलह न होगा; ऐसा धर्माचार्योंने सदाके लिये निश्चय किया है। राज्यनीति व लोक-व्यवहारके अनुसार दायके निर्णय करनेमें विवाद न होगा ॥३८॥

सब्बं सब्बस मदं जहा तहा दाय भायम्मि ।
सब्बेसिं हि अहावे पुह्लणिवो वित्त वंभ विणा ॥३९॥

अर्थ—बांट इस प्रकारसे करनी चाहिए जो सबको स्वीकृत हो और जो सबके फायदेके लिए हो। इन (उपर्युक्त) दायादोंके अभावमें धनका स्वामी राजा होगा, परन्तु ब्राह्मणके धनका नहीं ॥३९॥

बंभस्स जं धणं विहु तस्सहु भज्जाहि विंभणा अण्णे।
जिट्ठठे गयेहु मायरि तहिय कणिट्ठे विमत्त स दब्वे ॥४०॥

अर्थ—यह निश्चय है कि ब्राह्मणके धनकी अधिकारिणी उसकी स्त्री होगी और उसके अभावमें कोई ब्राह्मण ही स्वामी होगा। और ज्येष्ठ भाईकी मृत्युपर उसके छोटे भाई उसका धन बांट लें ।।४०।।

सोयरबंधु बग्गो गेह्लदु तेसिं धणं कमसो।
पडिदो पंगू वहिरो उम्मत्तो संद कुज्ज अंधो य ॥४१॥
बिसई जडो य कोही गूँगो रुग्गो य पयडूलो।
विसणी अभक्खभोई एदेसिं भाग जुग्गदो णत्थि ॥४२॥
भुत्ति बसण जणिता परंदु जस्सा विकस्सावि।
मंतो सहाई शुद्धा एदेसिं भाग जोगदा अत्थि ॥४३॥

अर्थ—यदि उसके कोई भाई-बन्धुजन (वारिस) नहीं हैं तो उसके दायाद उपर्युक्त क्रमानुसार होंगे। पवित, पंगु, बधिर, उन्मत्त, नपुंसक, कुबड़ा, अन्धा, विषयी, पागल, क्रोधी, गूंगा, रोगी, बैरी, सप्तकुव्यसनी, अभक्ष्यभोजी, ऐसा व्यक्ति भाग नहीं पाता। भोजनवस्त्रसे उनका भरण-पोषण करना चाहिए। और यदि वे मन्त्रादिसे अच्छे हो जायें तो उनमें दाय-अधिकारकी योग्यता होती है ।।४१-४३।।

एदसि बि सुदा अवि दुहिरा जो सब्ब गुण सुद्धोय।
होइहू भाय सु जुग्गा णियधम्मरदा जणाहु सब्बेसिं ॥४४॥

अर्थ—यदि यह (अयोग्य ब्यक्ति) अच्छे न हो सकें तो उनके दोहितेको जो सर्वगुणशुद्ध हों (करीबी दायादोंके अभावमें) उनका हिस्सा मिलेगा। यह समझ लेना चाहिए कि इन सबको धर्ममें संलग्न रहना चाहिए ।।४४।।

जहकालं जहखेतं जहाबिहिं तेसिं समभाऊ।
बिबरीया णिव्वस्सा पडिउलाये तहेव वोढव्वा ॥४५॥

अर्थ—धनका भाग यथाकाल, यथाक्षेत्र, नियमानुकूल समभागमें कर देना चाहिए। जो सर्वथा सद्व्यवहारके प्रतिकूल चले वह भागका अधिकारी न होगा, (और), जो माता-पिताके विरोधी हैं वह भी दायके हकदार न होंगे ।।४५।।

पुब्बहु तहा सुद कमसो भायस्स भाइणो होई।
इत्थिय धण खु दिण्णं पाणिगहणस्स कालये सब्बं ॥४६॥

अर्थ—पूर्व स्त्री, फिर पुत्र, यह क्रमशः दायके भागी होंगे। जो विवाहके समय मिले वह सब स्त्रीधन है ।।४६।।

माया पिया भयिष्णा पिच्चसुसायेहिं संदिण्णं।
भूसण वत्थ हयादिय सब्बं खलु जाण इत्थिधणं ॥४७॥

अर्थ—माता, पिता, भ्राता, बुआ (पिताकी भगिनी) आदिने जो आभूषण, वस्त्र घोड़े आदि दिये हों सो सब (स्त्रीधन) है ॥४७॥

तम्हि धणम्हिय भाउ णहि एयस्साबि दायस्स ।
सप्पयाइ णिप्पयाइंहिं हबे विसेसोय मादुये समयं ॥४८॥

अर्थ—उस (स्त्रीधन) में किसी दायादका कुछ अधिकार नहीं । स्त्री सप्रजा (पुत्रवती) अप्रजा (अपुत्रवती) दो भेदवाली होती है ॥४८॥

तज्जासुय भइणिसुया ण कोवि तस्सा णिबारउ होई ।
जो सुद भाइ भतिज्जउ सक्खोकिय जं परस्सु धणदिण्णं ॥४९॥

तस्सहि कोउ णिसिद्धा ण होइ किमु वा विसेसेण ।
साक्खी विणाय दिण्णं ण धणं तस्सावि होइ णिवियदो ॥५०॥
जादे दिग्धविवादे तस्सेव धणं धुवं होई ।
एवं दायविभायं जहागमं मुणिबरेहिं णिदिट्ठं ॥५१॥

अर्थ—(स्त्रीधनका सप्रजा माताकी मृत्यु पर) उसका पुत्र अथवा भानजा (मालिक होगा) । उनको कोई रोक नहीं सकता । अपुत्रा (अप्रजा) के मालिक भतीजे (भाईके पुत्र) होंगे । गवाहोंकी साक्षीमें जो धन किसीको दिया जाये उसमें कोई उज्र नहीं कर सकता है । इससे अधिक क्या हो सकता है । जो धन साक्षी बिना किसीको दिया जावे वह उसका कभी नहीं होता है । विभागके पश्चात् यदि झगड़ा हो तो वह जायदाद देनेवाले ही की ठहरेगी । इस प्रकार से दाय व विभाग शास्त्रानुसार मुनियोंने वर्णन किया है ॥४९-५१॥

तं खु ववहारादो इयलोयभवंहि णादव्वं ।
धम्मो दुविहो सावय आयारो धम्म पुव्वाव पढमं ॥५२॥

अर्थ—यह दायभागसे नियम इस लोकके व्यवहारार्थ जानना चाहिए । धर्म दो प्रकारका है—एक श्रावक धर्म जो कि प्रथम है और गृहस्थधर्मपूर्वक होता है ॥५२॥

दुदिउ वउ पजुतो मूलं पाक्खिगमउ सौचो ।
भरहे कोसलदेसे साकेये रिसहदेव जिणणाहो ॥५३॥

जादो तेणेउ कम्मवि भूमे रयणा समुदिट्ठा ।
तस्स सुद्देण य चक्क पवट्ठिणा भरहराय संगेण ॥५४॥

आयार दाण दंडा दायबिभाया समुदिट्ठा।
वसुणंदि इंदणं दिहि रचिया सा संहिदा पमाणाहु ॥५५॥

अर्थ—दूसरा धर्म उनके लिए है जो व्रतोंको पालते हैं। पवित्रताकी वृद्धि ही जिनका आश्रय है। भरतक्षेत्रके कोशल देशमें और अयोध्या नगरीमें श्रीऋषभदेव उत्पन्न हुए। उन्होंने कर्मभूमिकी रचनाका उपदेश दिया था। उनके पुत्र भरत चक्रवर्तीने आचार, दान, दण्ड, दाय और विभागके नियम बनाये थे। वही वसुनन्दि इन्द्रनन्दिने संहितामें कहा है सो प्रमाण है ॥५३-५५॥

अर्हन्नीति

लक्ष्मणातनयं नत्वा द्युसदिन्द्रादिसेवितम् ।
गेयामेयगुणाविष्टं दायभागः प्ररूप्यते ॥१॥

अर्थ—(माता) लक्ष्मणारानीके पुत्र (श्रीचन्द्रप्रभु स्वामी) को नमस्कार करके जिनको सम्पूर्ण प्रकारके इन्द्रादि देव प्रणाम करते हैं और जो सर्वगुणालंकृत हैं दायभागका अध्याय रचा गया है ॥१॥

स्वस्वत्वापादनं दायः स तु द्वैविध्यमश्नुते ।
आद्यः सप्रतिबन्धश्च द्वितीयोऽप्रतिबन्धकः ॥२॥

अर्थ—जिसके द्वारा सम्पत्तिमें अधिकारका निर्णय हो वह दाय है । यह दो प्रकारका है । एक सप्रतिबन्ध, दूसरा अप्रतिबन्ध ॥२॥

दायो भवति द्रव्याणां तद्द्रव्यं द्विविधं स्मृतम् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव स्थितिमतं स्थावरं मतम् ॥३॥
गृहभूम्यादिवस्तूनि स्थावराणि भवन्ति च ।
जङ्गमं स्वर्णरौप्यादि यत्प्रयोगेन गच्छति ॥४॥

अर्थ—दायका सम्बन्ध द्रव्यसे होता है । द्रव्य दो प्रकारका है । एक स्थावर दूसरा जङ्गम । जो पदार्थ स्थिर हों—जैसे भूमि, फुलवाड़ी इत्यादि—वह सब स्थावर हैं । स्वर्ण-चाँदी इत्यादि जो पृथक् हो सके सो जङ्गम हैं ॥३-४॥

न विभज्यं न विक्रेयं स्थावरं च कदापि हि ।
प्रतिष्ठाजनकं लोके आपदाकालमन्तरा ॥५॥

अर्थ—स्थावर धनको जिसके कारण इस लोकमें प्रतिष्ठा होती है किसी सूरतमें भी आपत्ति-कालके अतिरिक्त बांटना अथवा बेचना नहीं चाहिए ॥५॥

सर्वेषां द्रव्यजातानां पिता स्वामी निगद्यते ।
स्थावरस्य तु सर्वस्य न पिता न पितामहः ॥६॥

अर्थ—सर्व प्रकारके द्रव्यका पिता स्वामी कहा जाता है । परन्तु स्थावर द्रव्यके स्वामी न पिता होता है न पितामह ही ॥६॥

जीवत्पितामहे ताते दातुं नो स्थावरे क्षमः ।
तथा पुत्रस्य सद्भावे पितामहमृतावपि ॥७॥

अर्थ—बाबाकी जिन्दगीमें पिताको स्थावर वस्तुको दे देनेका अधिकार नहीं है। इसी प्रकार पुत्रकी उपस्थितिमें पितामहके न होते हुए भी स्थावर वस्तुको पिता दूसरेको नहीं दे सकता ॥७॥

पिता स्वोपार्जितं द्रव्यं स्थावरं जङ्गमं तथा।
दातुं शक्तो न विक्रेतुं गर्भस्थेऽपि स्तनंधये ॥८॥

अर्थ—पुत्र यदि गर्भमें हो अथवा गोदमें हो तो पिता अपना स्वयं उपार्जन किया हुआ स्थावर-जङ्गम दोनों प्रकारका धन किसीको दे या बेच नहीं सकता है ॥८॥

अज्ञाता अथवा हीनाः पितुः पुत्राः सदा भुवि।
सर्वे स्वाजीविकार्थं हि तस्मिन्नंशहराः स्मृताः ॥९॥

अर्थ—पुत्र अज्ञानी, मूर्ख, अंगहीन, आचारभ्रष्ट भी हो तो भी अपनी रक्षा व गुजारेके लिए पिताके द्रव्यमें भागका अधिकारी है ॥९॥

बाला जातास्तथाऽजाता अज्ञानाश्च शवा अपि।
सर्वे स्वाजीविकार्थं हि तस्मिन्नंशहरा स्मृताः ॥१०॥

अर्थ—जो बालक उत्पन्न नहीं हुआ है तथा उत्पन्न हो गया है और जो बुद्धिरहित है अथवा जो उत्पन्न होकर मर गया है (भावार्थ मृतक पुत्रकी सन्तान), ये सब अपनी-अपनी जीविकाके लिए उस धनके उत्तराधिकारी हैं ॥१०॥

अप्राप्तव्यवहारेषु तेषु माता पिता तथा।
कार्ये त्वावश्यके कुर्यात्तस्य दानं च विक्रयम् ॥११॥

अर्थ—पुत्र रोजगार न जानते हों (भावार्थ नाबालिग हों) तो उनके माता-पिता किसी आवश्यकताके समय अपनी स्थावर वस्तुको बेच सकते हैं और पृथक् कर सकते हैं ॥११॥

दुःखागारे हि संसारे पुत्रो विश्रामदायकः।
यस्मादृते मनुष्याणां गार्हस्थ्यं च निरर्थकम् ॥१२॥

अर्थ—दुःखके स्थान-रूपी इस संसारमें पुत्र विश्रामको देनेवाला है। बिना पुत्रका घर निरर्थक है ॥१२॥

यस्य पुण्यं बलिष्ठं स्यात्तस्य पुत्रा अनेकशः।
संभूयैकत्र तिष्ठन्ति पित्रोस्सेवासु तत्पराः ॥१३॥

अर्थ—जिस मनुष्यका पुण्य बलवान् है उसके बहुत पुत्र होते हैं, और सब आपसमें शामिल रहकर सहर्ष माता-पिताकी सेवा करते हैं ॥१३॥

लोभादिकारणाज्जाते कलौ तेषां परस्परम् ।
न्याया नुसारिभिः कार्या दायभागविचारणा ॥१४॥

अर्थ—यदि लोभके कारण भाई-भाईमें कलह उत्पन्न हो जाय तो द्रव्यकी बाँट न्यायानुकूल करनी चाहिए ॥१४॥

पित्रोरूर्ध्वं तु पुत्राणां भागः सम उदाहृतः ।
तयोरन्यतमे नूनं भवेद्भागस्तदिच्छया ॥१५॥

अर्थ—माता-पिताके मरनेके पश्चात् पुत्रोंका समान भाग होता है। परन्तु मातापिता-मेंसे कोई जीवित हो तो बँटवारा उसकी इच्छानुसार होता है ॥१५॥

विभक्ता अविभक्ता वा सर्वे पुत्राः समांशतः ।
पित्रोर्ऋणं प्रदत्वैव भवेयुर्भागभागिनः ॥१६॥

अर्थ—पृथक् हो अथवा शामिल सब पुत्र पिता-माताके ऋणको बराबर-बराबर भागमें देकर हिस्सेके हकदार होते हैं ॥१६॥

धर्मतश्चेत्पिता कुर्यात्पुत्रान् विषमभागिनः ।
प्रमाणवैपरीत्ये तु तत्कृस्याप्रमाणता ॥१७॥

अर्थ—धर्मभावसे पिता अपना द्रव्य पुत्रोंको न्यूनाधिक भी दे दे तो अयोग्य नहीं, परन्तु विपरीत बुद्धिसे दे तो वह नाजायज होगा ॥१७॥

व्यग्रचित्तोऽतिवृद्धश्च व्यभिचाररतस्तु यः ।
द्यूतादिव्यसनासक्तो महारोगसमन्वितः ॥१८॥
उन्मत्तश्च तथा क्रुद्धः पक्षपातयुतः पिता ।
नाधिकारी भवेद् भागकरणे धर्म्मवर्जितः ॥१९॥

अर्थ—अत्यन्त व्यग्र चित्तवाला, अत्यन्त वृद्ध, व्यभिचारी, जुआरी, खोटे चाल-चलनवाला, पागल, महारोगी, क्रोधमें भरा हुआ, पक्षपाती पिताका किया हुआ विभाग धर्मानुकूल न होनेके कारण मान्य नहीं है ॥१८-१९॥

असंस्कृता येऽनुजास्तान् संस्कृत्य भ्रातरः स्वयं ।
अवशिष्टं धनं सर्वे विभजेयुः परस्परम् ॥२०॥

अर्थ—पिताकी सम्पत्तिमेंसे बच्चों (पिताके लड़के-लड़कियों) के संस्कारोंके पश्चात् शेषको सब भाई बाँट लें ॥२०॥

नोट—यहाँ पर "संस्कार" शब्दमें शिक्षा, विवाह आदि शामिल हैं।

अनुजानां लघुत्वे तु सर्वथाप्यग्रजो धनम् ।
सर्वं गृह्णाति तत्पैत्र्यं तदा तान्पालयेत्सदा ॥२१॥

अर्थ—छोटे भाई बालक हों तो बड़ा भाई पिताकी सम्पूर्ण सम्पत्तिको निज हाथमें रखकर उनका पालन पोषण करे ॥२१॥

विभक्तानविभक्तान्वै भ्रातॄन् ज्येष्ठः पितेव सः ।
पालयेत्तेऽपि तज्जेष्ठं सेवन्ते पितरं यथा ॥२२॥

अर्थ—जुदा हो गये हों अथवा शामिल रहते हों छोटे भाइयोंको बड़े भाईको पिताके समान मानकर उसकी सेवा करनी चाहिए और बड़ा भाई उनको पुत्रके समान समझकर उनका पालन करे ॥२२॥

पूर्वजेन तु पुत्रेण अपुत्रः पुत्रवान् भवेत् ।
ततो न देयः सोऽन्यस्मै कुटुम्बाधिपतिर्यतः ॥२३॥

अर्थ—प्रथम जन्मे हुए पुत्रसे अपुत्र मनुष्य सपुत्र कहलाता है । इसलिए ज्येष्ठ पुत्र किसीको (दत्तक) देना उचित नहीं, क्योंकि वह कुटुम्बका अधिपति होता है ॥२३॥

ज्येष्ठ एव हि गृह्णीयात् पैत्र्यं धनमशेषतः ।
शेषास्तदनुसारित्वं भजेयुः पितरं यथा ॥२४॥

अर्थ—ज्येष्ठ पुत्र पिताका सब धन स्वाधीन करे और शेष भाई पिता समान समझकर उसकी आज्ञानुकूल चलते रहें ॥२४॥

एकानेका च चेत्कन्या पित्रोरूर्ध्वं स्थिता तदा ।
स्वांशात्पुत्रस्तुरीयांशं दत्त्वाऽवश्यं विवाहयेत् ॥२५॥

अर्थ—एक या अधिक भगिनी पिताके मरे पश्चात् कुंवारी हों तो उनको सब भाई अपने अपने भागका चतुर्थांश लगाकर ब्याह दें ॥२५॥

विवाहिता च या कन्या तस्या भागो न कर्हिचित् ।
पित्रा प्रीत्या च यद्दत्तं तदेवास्या धनं भवेत् ॥२६॥

अर्थ--जिस कन्याका ब्याह हो गया हो उसको पिताके द्रव्यमें भाग नहीं होगा । पिताने जो कुछ उनको दिया हो वही उसका धन है ॥२६॥

यावतांशेन तनया विभक्ता जनकेन तु ।
तावतैव विभागेन युक्ताः कार्या निजस्त्रियः ॥२७॥

अर्थ--पिताको अपनी स्त्रियोंको पुत्रोंके समान भाग देना चाहिए ॥२७॥

पितुरूर्ध्वं निजाम्बायाः पुत्रैर्भागश्च सार्थकः ।
लौकिकव्यवहारार्थं तन्मृतौ ते समांशिनः ॥२८॥

अर्थ--यदि पिताके मरनेके पश्चात् बाँट हो तो पुत्रोंको चाहिए कि अपनी माताको आधा-आधा भाग लोक-व्यवहारके लिए दें और उसके मरनेके पीछे उस धनको सम भागोंमें बांट लें ॥२८॥

पुत्रयुग्मे समुत्पन्ने यस्य प्रथमनिर्गमः ।
तस्यैव ज्येष्ठता ज्ञेया इत्युक्तं जिनशासने ॥२९॥

अर्थ—दो पुत्र एक गर्भसे हों तो जो पुत्र प्रथम पैदा हो वही ज्येष्ठ पुत्र है। ऐसा जैन शासनका वचन है ॥२९॥

दुहितापूर्वमुत्पन्ना सुतः पश्चाद्भवेद्यदि ।
पुत्रस्य ज्येष्ठता तत्र कन्याया न कदाचन ॥३०॥

अर्थ—प्रथम कन्या जन्मे फिर पुत्र, तो भी पुत्र ही ज्यैष्टयका हकदार होगा, कन्या ज्येष्ठ नहीं हो सकती ॥३०॥

यस्यैकस्यां तु कन्यायां जातायां नान्यसंततिः ।
प्राप्तं तस्याश्चाधिपत्यं सुतायास्तु सुतस्य च ॥३१॥

अर्थ--जिस मनुष्यके केवल एक कन्या हो और कुछ सन्तान न हो तो उसकी मृत्युके पश्चात् उसके धनके मालिक पुत्री-दोहिते होंगे ॥३१॥

आत्मैव जायते पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।
तस्यामात्मनि तिष्ठत्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥३२॥

(देखो भद्रबाहुसंहिता २६) ॥३२॥

गृह्णाति जननी द्रव्यं मृता च यदि कन्यका ।
पितृद्रव्यमशेषं हि दौहित्रः सुतरां हरेत् ॥३३॥

अर्थ--ब्याही हुई कन्या माताका द्रव्य पाती है, इसलिए उसका पुत्र (अर्थात् दोहिता) उसके पिताका द्रव्य लेता है ॥३३॥

पौत्रदौहित्रयोर्मध्ये भेदोऽस्ति न हि कश्चन ।
तयोर्देहेन सम्बन्ध पित्रोर्देहस्य सर्वथा ॥३४॥

अर्थ--पौत्र और दोहिता (कन्याका पुत्र) में कुछ भेद नहीं है। इन दोनोंके शरीरोंमें माता पिताके शरीरका सम्बन्ध है ॥३४॥

विवाहिता च या कन्या चेन्मृताऽपत्यवर्जिता ।
तदा तद्द्युम्नजातस्याधिपतिस्तत्पतिर्भवेत् ॥३५॥

अर्थ--ब्याही हुई कन्या जो सन्तान बिना मर जावे तो उसके धनका मालिक उसका पति है ॥६५॥

विभागोत्तरजातस्तु पुत्रः पित्रंशभाग् भवेत् ।
नापरेभ्यस्तु भ्रातृभ्यो विभक्तेभ्योंऽशमाप्नुयात् ॥३६॥

अर्थ--बाँट हो जानेके पश्चात् जो पुत्र उत्पन्न हो वह पिताका हिस्सा पाता है। और अपने जुदे भाइयोंसे हिस्सा नहीं पा सकता है ॥३६॥

पितुरूर्ध्वं विभक्तेषु पुत्रेषु यदि सोदरः।
जायते तद्विभागः स्यादायव्यय विशोधितात् ॥३७॥

अर्थ—बाँटके पश्चात् पिता मर जावे और फिर एक और भाई जन्मे जो बाँटके वक्त पेटमें था तो वह जायदादमें आमदनी व खर्चका हिसाब लगाकर भाग पाता है ॥३७॥

ब्राह्मणस्य चतुर्वर्णः स्त्रियः सन्ति तदा वसु।
विभज्य दशधा तज्जान् चतुस्त्रिद्व्यंशभागिनः ॥३८॥

अर्थ—यदि किसी ब्राह्मणकी स्त्री चार वर्णकी हों तो उसके धनके १० भाग करने चाहिए और उनमेंसे ब्राह्मणीके पुत्रको ४ क्षत्रियाके पुत्रको ३ वैश्याणीके पुत्रको २ भाग देने चाहिए ॥३८॥

कुर्यात्पिता वशिष्ठं तु भागं धर्मे नियोजयेत्।
शूद्राजातो न भागार्हो भोजनांशुकसंतरा।।३९॥

अर्थ—शेषका एक भाग धर्म-कार्यमें लगा देना चाहिए। शूद्रा स्त्रीका पुत्र रोटी कपड़ेके अतिरिक्त भाग नहीं पा सकता है ॥६९॥

क्षत्राज्जातः सवर्णायामर्धभागी विशात्मजात्।
जातस्तुर्यांशभागी स्याच्छूद्रोत्पन्नोऽन्नवस्त्रभाक् ॥४०॥

अर्थ—क्षत्रिय पिताके क्षत्रिय स्त्रीके पुत्रको पिताका आधा और वैश्य स्त्रीके पुत्रको चौथाई धन मिलेगा। उसका शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न हुआ पुत्र केवल भोजन और वस्त्रका ही अधिकारी होगा ॥४०॥

वैश्याज्जातः सवर्णायां पुत्रः सर्वपतिर्भवेत्।
शूद्राजातो न दायादो योग्यो भोजनवाससाम् ॥४१॥

अर्थ—वैश्य पिताका सवर्ण स्त्रीका पुत्र पिताका सर्व धन लेता है। उसका शूद्रा स्त्रीका पुत्र वारिस नहीं है, अस्तु वह केवल भोजन वस्त्रका अधिकारी है ॥४१॥

वर्णत्रये कदा दासीवर्णशूद्रात्मजो भवेत्।
जीवत्तातेन यत्तस्मै दत्तं तत्तस्य निश्चितम् ॥४२॥
मृते पितरि तत्पुत्रैः कार्यं तेषां हि पालनम्।
निबंधश्च तथा कार्यस्तातं येन स्मरेद्धि सः ॥४३॥

अर्थ—तीन (उच्च) वर्णों के पुरुषोंके पास बैठी हुई शूद्र वर्णकी स्त्रीसे जो पुत्र उत्पन्न हों उनको पिता अपने जीवन-कालमें जो कुछ दे उसके वह निश्चय मालिक होंगे। पिताके मरे पीछे उक्त दासीपुत्रोंके निर्वाहके लिए बन्दोबस्त कर देना चाहिए जिससे कि पिताको याद रक्खें ॥४२-४३॥

शूद्रस्य स्त्री भवेच्छूद्रा नान्या तज्जातसूनवः ।
यावन्तस्तेऽखिला नूनं भवेयुः समभागिनः ॥४४॥

अर्थ—शूद्र पुरुषकी स्त्री शूद्रा होती है अन्य वर्णकी नहीं होती । उस स्त्रीके पुत्र पिता के धनमें बराबर भागके अधिकारी होंगे ॥४४॥

दास्यां जातोऽपि शूद्रेण भागभाक् पितुरिच्छया ।
मृते तातेऽर्धभागी स्यादूढाजो भ्रातृभागतः ॥४५॥

अर्थ—शूद्रसे दासीके पेटसे जो पुत्र जन्मे उसको पिताके धनका पिताके इच्छानुसार भाग मिलता है । और पिताके मरनेके बाद वह विवाहिता बीबीके पुत्रसे आधा भाग पानेका अधिकारी होता है ॥४५॥

जीवनाशाविनिर्मुक्तः पुत्रयुक्तोऽथवा परः ।
सपत्नीकः स्वरक्षार्थमधिकारपदे नरम् ॥४६॥

दत्त्वा लेखं सनामाङ्कं राजाज्ञासाक्षिसंयुतम् ।
कुलीनं धनिनं मान्यं स्थापयेत् स्त्रीमनोऽनुगम् ॥४७॥

प्राप्याधिकारं पुरुषः परासौ गृहनायके ।
स्वामिना स्थापितं द्रव्यं भक्षयेद्वा विनाशयेत् ॥४८॥

भवेच्चेत्प्रतिकूलश्च मृतवध्वाः कथंचन ।
तदा सा विधवा सद्यः कृतघ्नं तं मदाकुलम् ॥४९॥

भूपाज्ञापूर्वकं कृत्वा स्वाधिकारपदच्युतम् ।
नरैरन्यैः स्वविश्वस्तैः कुलरीतिं प्रचालयेत् ॥५०॥

अर्थ—ऐसा शख्स जिसको रोगके बढ़ जानेसे जीनेकी आशा न रही हो चाहे वह पुत्रवान् हो अथवा न हो, परन्तु स्त्री उसके हो, वह अपने धनकी रक्षाके लिए ऐसे व्यक्ति को जो कुलीन और द्रव्यवान् हो एक लेख द्वारा जिस पर राजाकी आज्ञा हो और गवाहोंकी साक्षी हो रक्षक नियत करे । स्वामीकी मृत्यु पश्चात् यदि वह रक्षक उसके द्रव्यको खा जाय या नष्ट करे अथवा उसकी विधवाके प्रतिकूल हो जावे तो बेवाको चाहिए कि तत्काल राजाकी आज्ञा लेकर ऐसे कृतघ्न पुरुषको अधिकाररहित कर किसी अपने विश्वासपात्र दूसरे मनुष्यसे कुलरीत्यानुसार काम लेवे ॥४९–५०॥

तद्द्रव्यमतियत्नेन रक्षणीयं तया सदा ।
कुटुम्बस्य च निर्वाहस्तन्मिषेण भवेद्यथा ॥५१॥
सत्यौरसे तथा दत्ते सुविनीतेऽथवासति ।
कार्ये सावश्यके प्राप्ते कुर्याद्दानं च विक्रयम् ॥५२॥

अर्थ—उस (विधवा) को द्रव्यकी बड़े यत्नपूर्वक रक्षा करनी उचित है। जिससे उसकी (विधवाकी) चतुराईसे कुटुम्बका पालन हो। औरस पुत्र हो अथवा विनयवान् दत्तक पुत्रके होते हुए और पुत्रके अभावमें भी वह विधवा स्त्री आवश्यकताके समय पतिके धनोमेंसे दान कर सकती है वा वेच सकती है ॥५१-५२॥

भ्रष्टे नष्टे च विक्षिप्ते पत्यौ प्रव्रजिते मृते।
तस्य निःशेषवित्तस्याधिपा स्याद्वरवर्णिनी ॥५३॥

अर्थ—पति लापता हो जाय या मर जाय या बावला हो जाय या दीक्षा लेकर त्यागी हो जाय तो उसके सब धनकी स्वामिनी उसकी स्त्री होगी ॥५३॥

कुटुम्बपालने शक्ता ज्येष्ठा या च कुलाङ्गना।
पुत्रस्य सत्वेऽसत्वे च भ्रातृवत्साधिकारिणी ॥५४॥

अर्थ—कुटुम्बका पालन करनेमें समर्थ बड़ी विधवा, पुत्र हो तब भी और न हो तब भी पतिके धनकी उसके ही तुल्य अधिकारिणी होती है ॥५४॥

भ्रातृव्यं तदभावे तु स्वकुटुम्बात्मजं तथा।
असंस्कृत संस्कृतं च तदसत्वे सुतासुतम् ॥५५॥
बंधुजं तदभावे तु तस्मिन्नसति गोत्रजम्।
तस्यासत्वे लघुं सप्तवर्षसंस्थं तु देवरम् ॥५६॥
विधवा स्वौरसाभावे गृहीत्वा दत्तरीतितः।
अधिकारपदे भर्तुः स्थापयेत्पंचसाक्षितः ॥५७॥

अर्थ—औरस पुत्रके अभावमें विधवाको चाहिये कि वह पाँच साक्षियोंके समक्ष दत्तक विधिके अनुसार दत्तक पुत्र गोद लेकर उसको अपने धनका स्वामी बनावे। प्रथम भर्तके भाईका पुत्र, यदि वह न हो तो पति के कुटुम्बका बालक चाहे उसके संस्कार हुए हों चाहे नहीं, यह भी न हो तो निज कन्याका पुत्र (दोहिता), फिर किसी बन्धुका पुत्र, इसके बाद पतिके गोत्रका कोई लड़का, उसके अभावमें सात वर्षकी उम्रका देवर दत्तक पुत्र बनाया जा सकता है ॥५५-५७॥

यद्यसौ दत्तकः पुत्रः प्रीत्या सेवासु तत्परः।
विनयाद्भक्तिनिष्ठश्च भवेदौरसवत्तदा ॥५८॥

अर्थ—दत्तक पुत्र गोद लेनेवाले माता पिताकी सेवामें तत्पर हो और भक्तियुक्त विनयवान् हो तब औरसके समान समझा जाता है ॥५८॥

अप्रजा मनुजः स्त्री वा गृह्णीयाद्यदि दत्तकम्।
तदा तन्मातृमित्रादेर्लेख्यं वध्वादिसाक्षियुक् ॥५९॥

राजमुद्रांकितं सम्यक् कारयित्वा कुटुम्बजान् ।
ततो ज्ञातिजनांश्चैवाहूय भक्तिसमन्वितम् ॥६०॥
सधवा गीततूर्यादिमंगलाचारपूर्वम् ।
गत्वा जिनालये कृत्वा जिनाग्रे स्वस्तिकं पुनः ॥६१॥
प्राभृतं च यथाशक्ति विधाय स्वगुरुं तथा ।
गत्वा दत्त्वा च सद्दानं व्याघुट्ट्य निजमन्दिरम् ॥६२॥
आगत्य सर्वलोकेभ्यस्तांबूलश्रीफलादिकम् ।
दत्त्वा सत्कार्यस्वस्त्रादीन् वस्त्रालंकरणादिभिः ॥६३॥
आहूतस्वोयगुरुणा कारयेऽज्जातकर्म सः ।
ततो जातोऽस्य पुत्रोऽयमिति लोकैर्निगद्यते ॥६४॥

अर्थ—निःसंतान (अपुत्र) पुरुष वा स्त्री किसी बालकको दत्तक पुत्र बनावे तो उसके कुटुम्बीजनोंकी गवाही करावे और राजाकी मुहर करा ले। और भक्तिपूर्वक वन्धुजन तथा अन्य सम्बन्धियोंको बुलावे । सुहागिनी स्त्रियां मंगलगान करें तथा अन्य प्रकारके मंगलकार्य हों, बाजा बजाते गाते जिनालयमें जायें और भगवान्के सम्मुख स्वस्तिक रखकर यथाशक्ति द्रव्य भेंट चढ़ा स्वगुरुकी वन्दना कर सुपात्रोंको दान दे। फिर घर आये एकत्रित हुए बन्धुजनोंके सम्मानार्थ ताम्बूल और श्रीफल तथा निज भगिनियोंको वस्त्राभूषण दे सत्कार करे। अपने गुरुको बुलाकर उससे विधिपूर्वक जातकर्म करावे । फिर यह प्रसिद्ध होगा कि यह पुत्र इनका है ॥५९-६४॥

तदैवापणभूवास्तुग्रामप्रभृतिकर्मसु ।
अधिकारमवाप्नोति राजकार्येष्वयं पुनः ॥६५॥

अर्थ—इस पर (दत्तक पुत्र) दुकान, पृथ्वी, मकान, गाँव आदिके कामोंमें अधिकार प्राप्त करता है।।६५॥

सवर्णस्त्र्यौरसोत्पत्तौ तुर्यांशार्हो भवत्यपि ।
भोजनांशुकदानार्हा असवर्णास्तनंधयाः ॥६६॥

अर्थ—दत्तक पुत्र किये पश्चात् सवर्णा स्त्रीसे औरस पुत्र उत्पन्न हो तो दत्तकको चौथाई भाग मिले, परन्तु अन्य वर्णकी स्त्रीसे पुत्र जन्मे तो वह केवल भोजन वस्त्रका ही अधिकारी होता है ॥६६॥

नोट—यहाँ लॉ का मन्शा केवल उस दशासे विदित होता है जब कि वैश्य पिताके वैश्य और शूद्रा दो वर्णोंकी स्त्रियाँ हैं। अब यदि वैश्याणीसे पुत्र उत्पन्न हो तो दत्तकको ¼ भाग कुल धनका मिलेगा। शेष सब औरस पुत्र पावेगा। और जो शूद्रासे हो तो वह दत्तक सर्व सम्पत्ति पावेगा।

गृहीते दत्तके जाते औरसस्तर्हि बन्धनम् ।
उष्णीषस्य भवेत्तस्य नहि दत्तस्य सर्वथा ॥६७॥

अर्थ—यदि किसीने दत्तक पुत्र ले लिया हो और फिर औरस पुत्र उत्पन्न हो तो पगड़ी बाँधने का अधिकारी औरस पुत्र ही होगा। दत्तक पुत्रको पगड़ो बाँधनेका सर्वथा अधिकार नहीं है ॥६७॥

तूर्यमंशं प्रदाप्यैव दत्तः कार्यः पृथक् तदा ।
पूर्वमेवोष्णीषबन्धे यो जातः स समांशभाक् ॥६८॥

अर्थ—उस समय दत्तक पुत्रको चौथाई भाग देकर अलग कर देना चाहिए। यदि दत्तक पुत्रको पहिले पगड़ी बाँध दी गई हो और उसके बाद औरस पुत्र उत्पन्न हो तो औरस पुत्र उसके समान अधिकारका भागी है ॥६८॥

औरसो दत्तकश्चैव मुख्यौ क्रीतः सहोदरः ।
दौहित्रश्चेति कथिताः पञ्चपुत्रा जिनागमे ॥६९॥

अर्थ—औरस और दत्तक यही दोनों मुख्य पुत्र होते हैं; मोलका लिया, सहोदर, दोहिता यह गौण है यही पाँच प्रकारके पुत्र हैं जो जिनागममें कहे हैं ॥६९॥

धर्मपत्न्यां समुत्पन्न औरसो दत्तकस्तु सः ।
यो दत्तो मातृपितृभ्यां प्रीत्या यदि कुटुम्बजः ॥७०॥
क्रयक्रीतो भवेत्क्रीतो लघुभ्राता च सोदरः ।
सौतः सुतोद्भवश्चेमे पुत्रा दायहराः स्मृताः ॥७१॥

अर्थ—जो अपनी धर्मपत्नीसे उत्पन्न हुआ हो वह औरस कहलाता है; और जो अपने कुटुम्बमें उत्पन्न हुआ हो और उसके माता पिताने प्रेमपूर्वक दे दिया हो वह दत्तक पुत्र कहलाता है। जो मूल्य देकर लिया हो वह क्रीत है। छोटा भाई सहोदर है। पुत्रीका पुत्र सौत (दौहित्र) है। ये पाँच प्रकारके पुत्र उत्तराधिकारी (धनके भागीदार) कहाते हैं ॥७०-७१॥

पौनर्भवश्च कानीनः प्रच्छन्नः क्षेत्रजस्तथा ।
कृत्रिमश्चोपविद्धश्च दत्तश्चैव सहोटजः ॥७२॥
अष्टावमी पुत्रकल्पा जैने दायहरा नहि ।
मतान्तरीयशास्त्रेषु कल्पिताः स्वार्थसिद्धये ॥७३॥

अर्थ—ऐसी स्त्रीका पुत्र जिसका दूसरा विवाह हुआ हो, कन्याका पुत्र, छिनालेका पुत्र, नियोगसे पैदा हुआ पुत्र (क्षेत्रज), जिसे लेकर पाला हो (कृत्रिम), त्यागा हुआ बालक, जो स्वयं आ गया हो, माताके साथ (विवाहके पहलेके गर्भके

फलस्वरूप) आया हुआ पुत्र, इनमेंसे कोई भी जैन शास्त्रानुसार दायके अधिकारी नहीं है। अन्य मतके शास्त्रोंमें इनको स्वार्थवश पुत्र माना है ॥७२-७३॥

पत्नी पुत्रश्च भ्रातृव्याः सपिण्डश्च दुहितृजः।
बन्धुजो गोत्रजश्चैव स्वामी स्यादुत्तरोत्तरम् ॥७४॥
तदभावे च ज्ञातीयास्तदभावे महीभुजा।
तद्धनं सफलं कार्यं धर्म्ममार्गे प्रदाय च ॥७५॥

अर्थ—स्त्री, पुत्र, भाईका पुत्र, सात पीढ़ी तकका वंशज, दोहिता, बन्धुका पुत्र, गोत्रज, और इनके अभावमें ज्ञात्या यह क्रमशः एक दूसरेके अभावमें उत्तरोत्तर दायभागी होंगे। इन सबके अभावमें राजा मृतकके धनको किसी धर्मकार्यमें लगाकर सफल बना दे ॥७४–७५॥

प्रतिकूला कुशीला च निर्वास्या विधवापि सा।
ज्येष्ठदेवरतत्पुत्रैः कृत्वान्नादिनिबन्धनम् ॥७६॥

अर्थ—यदि विधवा कुलाम्नायके प्रतिकूल चलनेवाली और कुशीला है तो उसके पतिके भाई, भतीजोंको चाहिए कि उसके गुजारेका प्रबन्ध करके उसको घरसे निकाल दें ॥७६॥

सुशीलाप्रजसः पोष्या योषितः साधुवृत्तयः।
प्रतिकूला च निर्वास्या दुःशीला व्यभिचारिणी ॥७७॥

अर्थ—जो स्त्रियाँ सुशील हों जिनका आचरण अच्छा हो और जिनके कोई सन्तान न हो ऐसी स्त्रियोंका पालन पोषण करना चाहिए। जो व्यभिचारिणी हैं, बुरे स्वभावकी हैं और प्रतिकूल हैं उन्हें निकाल देना चाहिए ॥७७॥

भूता वेशादिविक्षिप्तात्युग्रव्याधिसमन्विता।
वातादिदूषिताङ्गा च मूकांधाऽस्पष्टभाषिणी ॥७८॥
मदान्धा स्मृतिहीना च धनं स्वीयं कुटुम्बकम्।
त्रातुं नहि समर्था या सा पोष्या ज्येष्ठदेवरैः ॥७९॥
भ्रातृजैश्च सपिंडैश्च बन्धुभिर्गोत्रजैस्तथा।
ज्ञातिजै रक्षणीयं तद्धनं चातिप्रयत्नतः ॥८०॥

अर्थ—भूतादिक बाधाके कारण जो विधवा बावली हो, जो अत्यन्त रोगी हो, जो फालिजके रोगमें मुब्तिला हो, गूङ्गी व अन्धी हो, जो साफ साफ बोल नहीं सकती हो, जो मानके मदसे उन्मत्त हो, जो स्मरण शक्तिमें असमर्थ हो और इस कारण अपने कुटुम्ब व धनकी भी रक्षा न कर सके, ऐसी स्त्रीके धनकी रक्षा क्रमपूर्वक उसके पतिके भाई, भतीजे, सात पीढ़ी तकके वंशियोंको तथा चौदह पीढ़ी तकके वंशियों तथा और जातिवालोंको यत्नपूर्वक करनी चाहिए ॥७८–८०॥

यच्च दत्तं स्वकन्यायै जज्जामातृकुलागतम् ।
तद्धनं नहि गृह्णीयात् कोऽपि पितृकुलोद्भवः ॥८१॥
किन्तु त्राता न कोऽपि स्यात्तदा तातधनं तथा ।
रक्षेत्तस्या मृतौ तच्च धर्ममार्गे नियोजयेत् ॥८२॥

अर्थ—जो द्रव्य कन्याको (खुद) दिया हो या जो उसको उसकी ससुरालसे मिला हो उसको कन्याके मैकेवा लोंको नहीं लेना चाहिए। किन्तु यदि उसका कोई रक्षक न रहे तो उस समय उस पुत्रीकी तथा उसके धनकी रक्षा करे और मरनेपर उस धनको धर्म-मार्गमें लगा देवे ॥८१–८२॥

आत्मजो दत्रिमादिश्च विद्याभ्यासैकतत्परः ।
मातृभक्तियुतः शान्तः सत्यवक्ता जितेन्द्रियः ॥८३॥
समर्थो व्यसनापेतः कुर्याद्रीतिं कुलागतम् ।
कर्तुं शक्तो विशेषं नो मातुराज्ञां विमुच्य वै ॥८४॥

अर्थ—औरस हों चाहे दत्तक पुत्र हों जो विद्याभ्यासमें तत्पर हों, माताकी भक्ति करनेवाले हों, शांतचित्त हों, सत्य बोलनेवाले जितेन्द्रिय हों, इनको चाहिए कि अपनी शक्त्यनुसार कुलाम्नायके अनुकूल काम करें; परन्तु उनको कोई विशेष कार्य माताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके करनेका अधिकार नहीं है ॥८३–८४॥

पितुर्मातुर्द्वयोः सत्वे पुत्रैः कर्तुं न शक्यते ।
पित्रादिवस्तुजातानां सर्वथा दानविक्रये ॥८५॥

अर्थ—माता पिता दोनोंके जीवते पुत्र पिताके धनको दान नहीं कर सकता है और न बेच सकता है ॥८५॥

पितृभ्यां प्रतिकूलः स्यात्पुत्रो दुष्कर्मयोगतः ।
जातिधर्माचारभ्रष्टोऽथवा व्यसनतत्परः ॥८६॥
स बोधितोऽपि सद्वाक्यैर्न त्यजेद्दुर्मतिं यदि ।
तदा तद्वृत्तमाख्याय ज्ञातिराज्याधिकारिणम् ॥८७॥
तदीयाज्ञां गृहीत्वा च सर्वैः कार्य्यो गृहाद्बहिः ।
तस्याभियोगः कुत्रापि श्रोतुं योग्यो न कर्हिचित् ॥८८॥

अर्थ—पापके उदयसे यदि पुत्र माता-पिताकी आज्ञा न माने और कुलकी मर्यादाके खिलाफ चले या दुराचारी हो और रास्तेसे समझनेपर बुरी आदतोंको नहीं छोड़े तो राजा और कुटुम्बके लोगोंसे फरयाद करके उनकी आज्ञासे उसको घरसे निकाल देना चाहिए। फिर उसकी शिकायत कहीं नहीं सुनीजा सकेगी ॥८६–८८॥

पुत्रीकृत्य स्थापनीयोऽन्यो डिम्भः सुकुलोद्भवः।
विधीयते सुखार्थं हि चतुर्वर्णेषु सन्ततिः ॥८९॥

अर्थ—उसके स्थानमें किसी अच्छे कुलके बालकको स्थापित करना चाहिए, क्योंकि सब वर्णोंमें सन्तान सुखके लिए ही होती है ॥८९॥

पारिव्रज्या गृहीतैकेनाविभक्तेषु बन्धुषु।
विभागकाले तद्भागं तत्पत्नी लातुमर्हति ॥९०॥

अर्थ—यदि सब भाई मिलकर रहते हैं और उनका विभाग नहीं हुआ है और ऐसी दशामें यदि कोई भाई दीक्षा ले ले तो विभाग करते समय उसके भागकी अधिकारिणी उसकी स्त्री होगी ॥९०॥

पुत्रस्त्रीवर्जितः कोऽपि मृतः प्रव्रजितोऽथवा।
सर्वे तद्भ्रातरस्तस्य गृह्णीयुस्तद्धनं समम् ॥९१॥

अर्थ—जो पुरुष पुत्र या स्त्रीको छोड़े बिना मर जाय अथवा साधु हो जाय तो उसका धन उसके शेष भाई व भाई के पुत्र सम भाग बाँट लें ॥९१॥

उन्मत्तोः व्याधितः पंगुः षंढोऽन्धः पतितो जडः।
स्रस्ताङ्गः पितृविद्वेषी मुमूर्षुर्वधिरस्तथा ॥९२॥
मूकश्च मातृविद्वेषी महाक्रोधी निरिन्द्रियः।
दोषत्वेन न भागार्हाः पोषणीयाः स्वभ्रातृभिः ॥९३॥

अर्थ—पागल, (असाध्य रोगका) रोगी, लंगड़ा, नपुंसक, अन्धा, पतित, मूर्ख, कोढ़ी, अङ्गहीन, पिताका द्वेषी, मृत्युके निकट, बहरा, मूक (गूंगा), मातासे द्वेष करनेवाला, महाक्रोधी, इन्द्रियहीन, ऐसे व्यक्ति भाग नहीं पा सकते। केवल और भाई उनका पालन-पोषण करेंगे ॥९२-९३॥

एषां तु पुत्राः पत्न्यश्चेच्छुद्धा भागमवाप्नुयुः।
दोषस्यापगमे त्वेषां भागार्हत्वं प्रजायते ॥९४॥

अर्थ—यदि ऐसे दूषणोंवाले व्यक्तिके पुत्र तथा स्त्री दोषरहित हों तो उसका भाग उनको मिलेगा और यदि वे स्वयं दोषरहित हो गये हों तो भागकी योग्यता पैदा हो जाती है ॥९४॥

विवाहितोऽपि चेद्दत्तः पितृभ्यां प्रतिकूलभाक्।
भूपाज्ञापूर्वकं सद्यो निःसार्यो जनसाक्षितः ॥९५॥

अर्थ—विवाह किये पश्चात् भी दत्तक पुत्र माता पिताके प्रतिकूल चले तो उसको तत्काल राजाकी आज्ञा लेकर गवाहोंकी साक्षीसे निकाल देना चाहिए ॥९५॥

पैतामहं वस्तुजातः दातुं शक्तो न कोऽपि हि।
अनापृच्छय निजां पत्नीं पुमान् भ्रातृगणं च वै ॥९६॥

अर्थ—अपनी स्त्री, पुत्र, भ्राताके पूछे बिना कोई पुरुष दादाकी सम्पत्ति किसीको नहीं दे सकता ॥९६॥

पितामहार्जिते द्रव्ये निबन्धे च तथा भुवि ।
पितुः पुत्रस्य स्वामित्वं स्मृतं साधारणं गतः ॥९७॥

अर्थ—जो द्रव्य पितामहका (पिताके पिताका) कमाया हुआ है वह चाहे जङ्गम हो या स्थावर उसपर पिता व पुत्र दोनोंका समान अधिकार है ॥९७॥

जातेनैकेन पुत्रेण पुत्रवत्योऽखिलाः स्त्रियः ।
अन्यतरस्या अपुत्राया मृतौ स तद्धनं हरेत् ॥९८॥

अर्थ—एक स्त्री के पुत्रका जन्म होनेसे (एक पुरुषकी) सम्पूर्ण स्त्रियाँ पुत्रवती समझी जाती हैं । अतएव उनमेंसे यदि कोई स्त्री मर जाय और उसको पुत्र न हो तो उसका द्रव्य वही पुत्र ले ॥९८॥

पैतामहे च पौत्राणां भागाः स्युः पितृसंख्यया ।
पितुर्द्रव्यस्य तेषां तु संख्यया भागकल्पना ॥९९॥

अर्थ—पितामह (दादा) के द्रव्यमें लड़कोंकी संख्या पर पोतोंको हिस्सा मिलता है और अपने अपने पिताके द्रव्यमेंसे पोते जितने हों समान भाग पाते हैं ॥९९॥

पुत्रस्त्वेकस्य संजातः सोदरेषु च भूरिषु ।
तदा तेनैव पुत्रेण ते सर्वे पुत्रिणः स्मृताः ॥१००॥

अर्थ—एकसे अधिक भाइयोंमेंसे यदि एक भाईके भी पुत्र उत्पन्न हो तो उसके कारण सकल भाई पुत्रवान होते हैं ॥१००॥

अविभक्तं क्रमायातं श्वशुरस्वं नहि प्रभुः ।
कृत्ये निजे व्ययीकर्तुं सुतसम्मतिमंतरा ॥१०१॥

अर्थ—परम्परासे चली आई ससुरेकी सम्पतिको अपने पुत्रकी सम्मति बिना मृतक लड़केकी विधवाको अपने कार्यमें खर्चनेका अधिकार नहीं है ॥१०१॥

विभक्ते तु व्ययं कुर्याद्धर्मादिषु यथारुचि ।
तत्पत्न्यपि मृतौ तस्य कर्तुं शक्ता तद्व्ययम् ॥१०२॥
निर्वाहमात्रं गृह्णीयात्तद्द्रव्यस्य चामिषतः ।
प्राप्तेऽधिकारं सर्वत्र द्रव्ये व्यवहृतौ सुतः ॥१०३॥

अर्थ—स्वामीके भागमें आये पश्चात् स्त्री अपनी इच्छानुसार धर्मादिक और अन्य कार्योंमें व्यय कर सकती है । परन्तु यदि पति बांटेके पहिले ही मर गया हो तो वह केवल गुजारे मात्रके लिए उसकी जायदादकी आमदनीके लेनेका हक रखती है । खर्च करनेका नहीं; शेष सब द्रव्यका अधिकारी पुत्रही है ॥१०२-१०३॥

नोट—यह नियम वहाँ लागू होगा जहाँ बाबा जीवित है और मृतक लड़केका लड़का जीवित है। नियम यह है कि अगर मृतक पुत्रको बाबाने हिस्सा देकर पृथक् कर दिया था तब विधवा उसकी वारिस होगी; नहीं तो जब उसका पति अपने जीते जी किसी वस्तुका मालिक नहीं था तो वह किसी वस्तुकी अधिकारिणी न होगी। क्योंकि बाबाके होते हुए उसके पतिका जायदादमें कोई अधिकार नहीं था।

तथापीशो व्ययं कर्तुं न ह्यंबानुमतिं विना।
सुते परासौ तत्पत्नी भर्तुर्धनहरी स्मृता ॥१०४॥
यदि सा शुभशीला स्त्री श्वश्रूनिर्देशकारिणी।
कुटुम्बपालने शक्ता स्वधर्मनिरता सदा ॥१०५॥

अर्थ—तौ भी पुत्रको माताकी सम्मति बिना खर्च करना उचित नहीं है। परन्तु उसके मरने पर उसकी स्त्री भर्तारके धनकी स्वामिनी होगी। अगर वह सुशीला आज्ञावान् कुटुम्बपालनमें तत्पर और स्वधर्मानुगामिनी है ॥१०४-१०५॥

सानुकूला च सर्वेषां स्वामिपर्यंकसेविका।
शुश्रूषया च सर्वेषु विनयानतमस्तका ॥१०६॥
नहि सापि व्ययं कर्तुं समर्था तद्धनस्य वै।
निजेच्छया निजां श्वश्रूमनापृच्छ्य च कुत्रचित् ॥१०७॥

अर्थ—यदि उक्त विधवा कुटुम्बीजनोंके अनुकूल है, भर्त्ताकी शय्याकी सेवक है, सासुका आदर करनेवाली है तो भी सासुकी आज्ञा (सम्मति) बिना अपने पतिका द्रव्य खर्च नहीं कर सकती है ॥१०६-१०७॥

नोट—ये दोनों श्लोक पिछले दोनों श्लोक अर्थात् १०४-१०५ के साथ मिलकर खानदानके लिये एक उम्दा कायदा कायम करते हैं जो वास्तव में केवल हिदायती (शिक्षा रूपमें) हैं।

श्वशुरस्थापिते द्रव्ये श्वश्रू सत्वेऽथवा वधूः।
नाधिकारमवाप्नोति भुक्त्याच्छादनमंतरा ॥१०८॥

अर्थ—जिस विधवाकी सासु जीवित हो उसको ससुरेके धनमें केवल भोजन वस्त्रका अधिकार है, विशेष दायका नहीं ॥१०८॥

दत्तगृहादिकं सर्वं कार्यं श्वश्रूमनोऽनुगम्।
करणीयं सदा वध्वा श्वश्रू मातृसमा यतः ॥१०९॥

अर्थ—उक्त विधवा सासुके इच्छानुकूल सौंपा हुआ घरका कार्य उसकी प्रसन्नताके लिये करती रहे, क्योंकि सासु माता समान होती है ॥१०९॥

गृह्णीयाद्दत्तकं पुत्रं पतिवद्विधवा वधूः ।
न शक्ता स्थापितुं तं च श्वश्रूर्निजपतेः पदे ॥११०॥

अर्थ—विधवा बहूको दत्तक पुत्र अपने पतिकी तरह लेना चाहिए। सासु अपने पतिके स्थान पर किसीको दत्तक स्थापन नहीं कर सकती हैं ॥११०॥

स्वभर्त्रोपार्जितं द्रव्यं श्वश्रूश्वशुर हस्तगम् ।
विधवाप्तुं न शक्ता तत्स्वामिहत्ताधिपैव हि ॥१११॥

अर्थ—पतिके निजी धनमेंसे जो द्रव्य सासु श्वसुरके हाथ लग चुका है उसको विधवा बहू उनसे वापिस नहीं ले सकती। जो कुछ पतिने उसको अपने हाथसे दिया है वही उसका है ॥१११॥

नोट—जो कुछ पतिने अपने पिता माताको दे डाला है उसकी मृत्यु पश्चात् लौटाया नहीं जा सकता।

अपुत्रपुत्रमरणे तद्द्रव्यं लाति तद्वधूः ।
तन्मृतौ तस्य द्रव्यस्य श्वश्रूः स्यादधिकारिणी ॥११२॥

अर्थ—जो पुत्र सन्तान बिना मरे उसका द्रव्य उसकी विधवाको मिले, और उस विधवा बहूकी मृत्यु हो जाय तब उसका द्रव्य सासु लेवे ॥११२॥

रमणोपार्जितं वस्तु जंगमं स्थावरात्मकम् ।
देवयात्राप्रतिष्ठादिधर्म्मकार्ये च सौहृदे ॥११३॥
श्वश्रूसत्वे व्ययीकर्तुं शक्ता चेद्विनयान्विता ।
कुटुम्बस्य प्रिया नारी वर्णनीयान्यथा न हि ॥११४॥

अर्थ—पतिकी उपार्जित की हुई जङ्गम स्थावर सामग्री देवयात्रा प्रतिष्ठादिक धर्मकार्योंमें लगाने, खर्चने और कुटुम्बीजनोंको दान देनेके लिए विधवाको अधिकार है, अगर वह विनयवान् व प्रशंसापात्र, सर्वप्रिय आदि गुणवाली हो, अन्यथा नहीं ॥११३-११४॥

अनपत्ये मृते पत्यौ सर्वस्य स्वामिनी वधूः ।
सापि दत्तमनादाय स्वपुत्रीप्रेमपाशतः ॥११५॥
ज्येष्ठादिपुत्रदायादाभावे पञ्चत्वमागता ।
चेत्तदा स्वामिनी पुत्री भवेत्सर्वधनस्य च ॥११६॥
तन्मृतौ तद्धवः स्वामी तन्मृतौ तत्सुतादयः ।
पितृपक्षीयलोकानां नहि तत्राधिकारिता ॥११७॥

अर्थ—जो पुरुष सन्तान रहित मर जाय तो उसके समस्त द्रव्यकी उसकी स्त्री मालिक होगी। यदि वह स्त्री अपनी पुत्रीके प्रेमवश किसीको दत्तक पुत्र न

बनावे और वह स्त्री मृत्यु पावे तो उसका धन उसके पतिके भतीजे आदिकी उपस्थितिमें भी उसकी पुत्रीको मिलेगा। उस कन्याके मरे पीछे उसका पति, उसके मरे पीछे उसके पुत्रादिक वारिस होंगे। उसके पितृपक्षके लोगोंका कुछ अधिकार नहीं रहता है ॥११५-११७॥

जामाता भागिनेयश्च श्वश्रूश्चैव कथंचन।
नैवैतेऽत्र हि दायादाः परगोत्रत्वभावतः ॥११८॥

अर्थ—जमाई, भानजा और सासु यह दाय भागके कदापि अधिकारी नहीं हैं। क्योंकि यह भिन्न गोत्रके हैं ॥११८॥

साधारणं च यद्द्रव्यं तद्भूता कोऽपि गोपयेत्।
भागयोग्यः स नास्त्येव दण्डनीयो नृपस्य हि ॥११९॥

अर्थ—भाग करने योग्य द्रव्यमेंसे यदि कोई भाई कुछ द्रव्य गुप्त कर दे तो हिस्सेके अयोग्य होता है। और राजदरबारसे दण्डका भागी होगा ॥११९॥

सप्तव्यसनसंसक्ताः सोदरा भागभागिनः।
न भवंति च ते दण्ड्या धर्म्मभ्रंशेन सज्जनैः ॥१२०॥

अर्थ—जो कोई भाई सप्त कुव्यसनोंके विषयी हों वे दायभागके भागी नहीं हो सकते, क्योंकि वह सज्जनों द्वारा धर्मभ्रष्ट होनेके कारण दण्डके पात्र हैं ॥१२०॥

गृहीत्वा दत्तकं पुत्रं स्वाधिकारं प्रदाय च।
तस्मादात्मीयवित्तेषु स्थिता स्वे धर्म्मकर्म्मणि ॥१२१॥
कालचक्रेण सोऽनूढश्चेन्मृतो दत्तकस्ततः।
न शक्ता स्थापितुं सा हि तत्पदे चान्यदत्तकम् ॥१२२॥

अर्थ—यदि किसी विधवा स्त्रीने दत्तक पुत्र लिया हो और उसको अपना सम्पूर्ण द्रव्य देकर खुद धर्मकार्यमें लीन हुई हो और दैवयोगसे वह दत्तक मर जाय तो उक्त विधवा स्त्री दूसरा दत्तक पुत्र उसके पद पर नहीं बिठा सकती है ॥१२१-१२२॥

जामातृभागिनेयेभ्यः सुतायै ज्ञातिभोजने।
अन्यस्मिन् धर्मकार्य्ये वा दद्यात्स्वं स्वं यथारुचि ॥१२३॥

अर्थ—वह (मृतक पुत्रकी माता) चाहे तो मृतकके धनको अपने जमाई, भानजा या पुत्रीको दे दे या जातिभोजन तथा धर्मकार्य में इच्छानुकूल लगा दे ॥१२३॥

युक्तं स्थापयितुं पुत्रं स्वीयभर्तृपदे तया।
कुमारस्य पदे नैव स्थापनाज्ञा जिनागमे ॥१२४॥

अर्थ—अपने पतिके स्थानपर पुत्र गोद लेनेका उसको अधिकार है; कुमारके स्थानपर दत्तक स्थापित करनेकी जिनागममें आज्ञा नहीं है ॥१२४॥

विधवा हि विभक्ता चेद्व्ययं कुर्याद्यथेच्छया ।
प्रतिषेद्धा न कोऽप्यत्र दायादश्च कथंचन ॥१२५॥

अर्थ—यदि विधवा स्त्री जुदी हो तो अपना द्रव्य निज इच्छानुसार व्यय कर सकती है; किसी अन्य दायादको उसके रोकनेका अधिकार नहीं ॥१२५॥

अविभक्ता सुताभावे कार्य्ये त्वावश्यकेऽपि वा ।
कर्त्तुं शक्ता स्ववित्तस्य दानमाधिं च विक्रयम् ॥१२६॥

अर्थ—आवश्यकताके समय अन्य मेम्बरोंके साथ शामिल रहनेवाली पुत्ररहित विधवा भी द्रव्यका दान तथा गिरवी वा बिक्री कर सकेगी ॥१२६॥

वाचा कन्यां प्रदत्त्वा चेत्पुनर्लोभे ततो हरेत् ।
सदण्ड्यो भूभृता दद्याद्वरस्य तद्धनव्यये ॥१२७॥

अर्थ—जो कोई प्राणी अपनी कन्या किसीको देनी करके लोभवश दूसरे पुरुषको देवे तो राजा उसको दण्ड दे और जो उसका खर्च हुआ हो वह प्रथम पतिको दिलवा दे ॥१२७॥

कन्यामृतौ व्ययं शोध्य देयं पश्चच्च तद्धनम् ।
मातामहादिभिर्दत्तं तद्गृह्णन्ति सहोदराः ॥१२८॥

अर्थ—यदि सगाई किये पीछे (और विवाहसे प्रथम) कन्या मर जाय तो जो कुछ उसको दिया गया हो वह खर्च काटकर (उसको भावी पतिको) लौटा देवे। जो कुछ कन्याके पास नाना आदिका दिया हुआ द्रव्य हो वह कन्याके सहोदर भाइयोंको दिया जायगा ॥१२८॥

निह्नुते कोऽपि चेज्जाते विभागे तस्य निर्णयः ।
लेख्येन बन्धुलोकादिसाक्षिभिर्भिन्नर्मभिः ॥१२९॥

अर्थ—यदि विभाग करनेमें कोई संदेह हो तो उसका निर्णय किस तौरसे होगा ? उसका निर्णय किसी लेखसे, भाइयोंकी तथा अन्य लोगोंकी गवाहियोंसे, और अन्य तरीकोंसे करना चाहिए ॥१२९॥

अविभागे तु भ्रतॄणां व्यवहार उदाहृतः ।
एक एव विभागे तु सर्वः संजायते पृथक् ॥१३०॥

अर्थ—बिना विभाग की हुई अवस्थामें सब भाइयोंका व्यवहार शामिल माना जाता है। यदि एक भाई अलग हो जाय तो सबका विभाग अलग अलग हो जायगा ॥१३०॥

भ्रातृवद्विधवा मान्या भ्रातृ जाया स्वबन्धुभिः ।
तदिच्छया सुतस्तस्य स्थापयेद्भ्रातृके पदे ॥१३१॥

अर्थ--भाईकी विधवाको शेष भाई भाईके समान मानते रहें और उसके इच्छानुसार उसके लिये दत्तक पुत्रको मृतक भाईके पद पर स्थापित करें ॥१३१॥

यत्किंचिद्वस्तुजातं हि स्वारामाभूषणादिकम् ।
यस्मै दत्तं च पितृभ्यां तत्तस्यैव सदा भवेत् ॥१३२॥

अर्थ--जो आभूषण आदिक माता पिताने किसी भाईको उसकी स्त्री के लिए दिये हों वह खास उसके होंगे ॥१३२॥

अविनाश्य पितुर्द्रव्यं भ्रातृणां सहायतः ।
हृतं कुलागतं द्रव्यं पिता नैव यदुद्धृतम् ॥१३३॥
तदुद्धृत्य समानीतं लब्धं विद्याबलेन च ।
प्राप्तं मित्राद्विवाहे वा तथा शौर्येण सेवया ॥१३४॥
अर्जितं येन यत्किंचित्तत्तस्यैवाचितं भवेत् ।
तत्र भागहरा न स्युरन्ये केऽपि च भ्रातरः ॥१३५॥

अर्थ—जो कोई भागदार पिताकी जायदादको व्यय किये बिना और भाइयोंकी सहायता बिना धन प्राप्त करे, और जो कुछ कोई भाई पितामहके द्रव्यको, जो हाथसे निकल गया था और पिताके समयमें फिर नहीं मिल सका था, प्राप्त करे, और जो कुछ विद्याको आमदनी हो, या दोस्तोंसे विवाहके मौकेपर मिला हो, या जो बहादुरी या नौकरी करके उपार्जन किया गया हो वह सब प्राप्त करनेवाले ही का है; उसमें और कोई भाई हकदार नहीं हो सकता ॥१३३-१३५॥

विवाहकाले वा पश्चात्पित्रा माता च बन्धुभिः ।
पितृव्यैश्च बृहत्स्वस्रा पितृष्वस्रा तथा परैः ॥१३६॥
मातृष्वस्रादिभिर्दत्तं तथैव पतिनापि यत् ।
भूषणांशुकपात्रादि तत्सर्वं स्त्री धनं भवेत् ॥१३७॥

अर्थ—विवाहके समय, अथवा पीछे पिताने, माताने, बन्धुओंने, पिताके भाइयोंने, बड़ी बहिनने, बुआने, या और लोगोंने, या मौसी इत्यादिने, या पतिने जो कुछ आभूषण वस्त्रादिक दिये हों सो सब स्त्रीधन है। उसकी स्वामिनी वही है ॥१३६-१३७॥

विवाहे यच्च पितृभ्यां धनमाभूषणादिकम् ।
विप्राग्निसाक्षिकं दत्तं तदध्याग्निकृतं भवेत् ॥१३८॥

अर्थ—विवाहके समय माता-पिताने ब्राह्मण तथा अग्निके सन्मुख अपनी कन्याको जो वस्त्र-आभूषण दिये सो सब अध्याग्नि स्त्रीधन है ॥१३८॥

पुनः पितृगृहाद्वध्वाऽनीतं यद्भूषणादिकम् ।
बन्धुभ्रातृसमक्षे स्यादध्याह्वदिकं च तत् ॥१३९॥

अर्थ—पुनः विवाह पश्चात् पिताके घरसे ससुरालको जाते समय जो कुछ वह भाइयों और कुटुम्बजनोंके समक्ष लावे वह आभूषणादिक सब अध्याह्वनिक स्त्री-धन कहलाता है ॥१३९॥

प्रीत्या स्नुषायै यद्दत्तं श्वश्र्वा च श्वशुरेण च ।
मुखेक्षणांघ्रिनमने तद्धनं प्रीतिजं भवेत् ॥१४०॥

अर्थ—मुख दिखाई तथा पग पड़नेपर सासु ससुरने जो कुछ दिया हो वह प्रीतिदान स्त्रीधन कहलाता है ॥१४०॥

पुनर्भ्रातुः सकाशा द्यत्प्राप्तं पितुर्गृहात्तथा ।
ऊढया स्वर्णरत्नादि तत्स्यादौदयिकं धनम् ॥१४१॥

अर्थ—विवाह पीछे फिर जो सोना रत्नादि विवाहित स्त्री अपने भाइयों अथवा मैकेसे लावे वह औदयिक स्त्री-धन कहलाता है ॥१४१॥

परिक्रमणकाले यदत्तं रत्नांशुकादिकम् ।
जायापतिकुलस्त्रीभिस्तदन्वाधेयमुच्यते ॥१४२॥

अर्थ—और परिक्रमा समय जो कुछ रत्न, रेशमी वस्त्रादिक पतिके कुटुम्बकी स्त्रियां व विवाहित स्त्री वा पुरुषसे मिले वह अन्वाधेय स्त्री धन कहलाता है ॥१४२॥

एतत् स्त्रीधनमादातुं न शक्तः कोऽपि सर्वथा ।
भागानार्हं यतः प्रोक्तं सर्वैर्नीतिविशारदैः ॥१४३॥

अर्थ—उपर्युक्त प्रकारके स्त्रीधनको कोई दायाद नहीं ले सकता है। कारण कि सर्वनीतिशास्त्रोंके जाननेवालोंने इनको विभागके अयोग्य बतलाया है ॥१४३॥

धारणार्थमलङ्कारो भर्त्रा दत्तो न केनचित् ।
गृह्यः पतिमृतौ सोऽपि व्रजेत्स्त्रीधनतां यतः ॥१४४॥

अर्थ—जो आभूषण भर्तारने अपनी स्त्रीके लिए बनवाए परन्तु उनको उसे देनेसे प्रथम आप मर गया तो उनको कोई दायाद नहीं ले सकता है। क्योंकि वह उसका स्त्रीधन है ॥१४४॥

व्याधौ धर्मे च दुर्भिक्षे विपत्तौ प्रतिरोधके ।
भर्त्तानन्यगतिः स्त्रीस्वं लात्वा दातुं न चार्हति ॥१४५॥

अर्थ—बीमारीमें, धर्म-कामके लिए, दुर्भिक्षमें, आपत्तिके समयमें या बन्धनके अवसर पर यदि पतिके पास और कोई सहारा न हो और वह स्त्री-धनको ले ले तो उसका लौटाना आवश्यक नहीं है ॥१४५॥

सम्भवेदत्र वैचित्र्यं देशाचारादिभेदतः ।
यत्र यस्य प्रधानत्वं तत्र तद्बलवत्तरम् ॥१४६॥

अर्थ—विविध देशोंके रिवाजोंके कारण नीतिमें भेद पाया जाता है । जो रिवाज जहाँ पर प्रधान होता है वही वहाँ पर लागू होगा ॥१४६॥

इत्येवं वर्णितस्त्वत्र दायभागः समासतः ।
यथाश्रुतं विपश्चिद्भिर्ज्ञेयोऽर्हन्नीतिशास्त्रतः ॥१४७॥

अर्थ—इस रीतिसे यहाँ सामान्यतः आगमानुसार, जैसा सुना है वैसा, दायभागका वर्णन किया । इस विषयमें अधिक देखना हो जैन मतके नीतिशास्त्रोंको देखना चाहिए ।।१४७॥

तृतीय भाग

जैनधर्म और डॉक्टर गौड़का "हिन्दू कोड"

यह बात छिपी हुई नहीं है कि कोई कोई वकील बैरिस्टर आवश्यकता पड़ने पर मनसूखशुदा नजीरें भी पेश करनेमें सङ्कोच नहीं करते, किन्तु यह किसीके यानमें नहीं आता कि डॉक्टर गौड़ जैसे उच्च कोटिके कानूनदाँ कानून-गौरव-पद्धतिका ऐसा निरादर और अनाचार करेंगे। विज्ञ डॉक्टरने अपने "हिन्दू कोड" में जैन धर्मके विषयमें कितनी ही बातें ऐसी लिखी हैं जो केवल आश्चर्यजनक हैं और वैज्ञानिक खोज द्वारा सिद्ध सिद्धान्तोंके विरुद्ध हैं। "वह जैनियोंको" हिन्दू डिस्सेन्टर्ज अर्थात् हिन्दू धर्मच्युत भिन्न मतानुयायी कहते हैं, और जैन धर्मको बौद्ध-धर्मका बच्चा बतलाते हैं।

हिन्दू कोडका ३३१ वाँ पैराग्राफ इस प्रकार है—

"जैन धर्म बौध धर्मसे अधिक प्राचीन होनेका दावा करता है, किन्तु वह उसका बच्चा है। वास्तवमें वह बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्मके बीचमेंका व्युत्पन्न मत है, जो उन लोगोंने स्थापित किया है जिनको एक नूतन धर्म स्वीकार नहीं था, और जिन्होंने एक ऐसे धर्मकी शरण ली जिसने अपना पुराना नाता हिन्दू धर्मसे कायम रक्खा और बौद्ध धर्मसे उसके धार्मिक आचार विचार ले लिये। समय पाके जैसे जैसे बौद्ध धर्मका प्रभाव भारतवर्षमें कम होता गया, उसकी गिरती हुई महिमा जैन धर्ममें बनी रही और गिरते गिरते वह हिन्दू धर्मके एक ऐसे रूपान्तरमें परिणत हुआ कि जिसमें उसका स्वत्व मिलकर लोप हो गया।"।

डॉक्टर गौड़ने किसी एक भी हिन्दू अथवा बौद्ध शास्त्र व पुराने ग्रन्थका उल्लेख नहीं किया है जिसमें जैन धर्मके अभ्युत्थानका वर्णन हो और वह ऐसा कोई भी धर्म-विचार वा धर्म-आचार नहीं बतला सकते हैं, जो जैन धर्मने बौद्ध धर्मसे लिया हो, तथापि उनको उपर्युक्त लेख लिखते हुए संकोच नहीं हुआ।

उनके प्रमाण निम्नलिखित हैं—

(१) माउन्ट स्टुअर्ट एल्फिस्टन् लिखित हिन्दू इतिहास

(२) हिन्दुस्तानकी अदालतोंके कुछ फैसले

(३) १८८१की बंगाल मनुष्य-गणनाकी रिपोर्ट पृ० ८७-८८

किन्तु ये समकालीन लेख नहीं हैं और अदालतकी नजरोंमें कहीं भी इस बातके निर्णय करनेकी चेष्टा नहीं की गई है कि जैन धर्म हिन्दू धर्म वा बौद्ध

धर्मका बच्चा है, अथवा नहीं। इनमेंसे एक फैसलेमें केवल एल्फिस्टनके भारत-इतिहाससे निम्नलिखित पंक्तियोंकी आवृत्ति की गई है और वह एक समाचारके रूपमें—

"जान पड़ता है कि जैनोंकी उत्पत्ति हमारे (ईसाके) संवत्‌की छठी वा सातवीं शताब्दीमें हुई। आठवीं वा नवीं शताब्दीमें वह विख्यात हुए, ग्यारहवींमें उन्नति सीमा पर पहुँच गये और बारहवींके पीछे उनका पतन हुआ।"

यह विचार निस्सन्देह प्रारम्भिक अन्वेषणार्थियोंका था जो जैन धर्मके विषयमें बहुत कम ज्ञान रखते थे, किन्तु जितनी आधुनिक खोज हुई है उस सबका निर्विवाद परिणाम यही है कि जैन धर्मको बौद्ध धर्मकी शाखा समझना एक भूल की। इस विषयमें योरुपीय व भारतवर्षीय प्राच्य-विद्वानों व खोज करनेवालोंमें कुछ भी मतभेद वा अन्तर नहीं है।

प्रोफेसर टी० डब्ल्यु० रहिस डेविड्स (Prof. T. W. Rhys Davids) अपनी पुस्तक 'बुद्धिस्ट इन्डिया' (Buddhist India) में पृष्ठ १४३ पर लिखते हैं—

"भारत इतिहासमें बौद्ध धर्मोत्थानसे पहिलेसे अब तक जैन जनता एक संगठित समाज रूपमें रहती आई है।"

एल्फिस्टनके मतानुसार जैनियोंकी उत्पत्ति ईसाकी छठी शताब्दीमें हुई है, किन्तु रहिस डेविड्सने दिखला दिया है कि जैन शास्त्र ईसासे चौथी शताब्दी पहले लिखे जा चुके थे। बुद्धिस्ट इण्डिया पुस्तकमें पृष्ठ १६४ पर वह लिखते हैं—

"यह शास्त्र वह है जो ईसासे चौथी शताब्दी पहले बन चुके थे जबकि भद्रबाहु समाजके गुरु थे।"

एल्फिस्टनने तो इतना ही कहा था कि "मालूम पड़ता है कि जैनियोंकी उत्पत्ति....इत्यादि" किन्तु डाक्टर गौड़ निश्चयके साथ कहते हैं कि जैन धर्म केवल बौद्ध धर्मका बच्चा है। "वास्तवमें वह बौद्ध और हिन्दू धर्मोंका समझौता है"।

डाक्टर गौड़ने किस आधारपर एक पुराने युरोपीय विचारवाले लेखककी सम्मतिको, जो उसने संकुचित और विशेषणात्मक शब्दोंमें प्रकट की थी, बदलकर निश्चय वाक्य रूपमें ३३१वें पैराग्राफमें हिन्दू कोडमें लिख डाला, यह उन्हींको मालूम होगा। किन्तु क्या वह कह सकते हैं कि वह उन बातोंसे अनभिज्ञ हैं जो १८८१ के पीछे पक्षपात रहित विद्वानोंने खोज करके सिद्ध की है? थोड़ा समय हुआ डाक्टर टी० के० लड्डूने जो एक हिन्दू विद्वान् हुए हैं, कहा था—

"वर्द्धमान महावीरके पहलेके किसी प्रामाणिक इतिहासका हमको पता नहीं लगता है, इतना तो निश्चित और सिद्ध है कि जैन धर्म बौद्ध धर्मसे पुराना है,

और भ० महावीरके समयसे पहले पार्श्वनाथ वा किसी और तीर्थंकरने इसको स्थापित किया था" (देखो पूर्ण व्याख्यान डॉक्टर टी० के० लड्डू जिसको आनरेरी सेक्रेटरी स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसने प्रकाशित किया है)। स्वर्गीय महामहोपाध्याय डॉक्टर सतीशचंद्र विद्याभूषणने भी इसी बातको सिद्ध किया है कि "यह निर्णय होता है कि इन्द्रभूति गौतम जो कि महावीरका निज शिष्य था, और जिसने उनके उपदेशोंका संग्रह किया, बुद्ध गौतमका समकालीन था, जिसने कि बौद्ध धर्म चलाया; और अक्षपाद गौतमका भी समकालीन था, जो कि ब्राह्मण था और न्याय सूत्रका बनानेवाला था" (देखो जैन गजेट जिल्द १० नं० १)।

डॉक्टर जे० जी० ब्यूह्लर (Dr. J. G. Buhler, C. I. E., LL. D, Ph. D.) बतलाते हैं—

'जैनियोंके तीर्थंकर-सम्बन्धी व्याख्याओंको बौद्ध स्वतः ही सिद्ध करते हैं। पुराने ऐतिहासिक शिलालेखों से वह सिद्ध होता है कि जैन आम्नाय स्वतन्त्र रूपमें बुद्धकी मृत्युके पीछेकी पाँच शताब्दियोंमें भी बराबर प्रचलित था, और कुछ शिलालेख तो ऐसे हैं कि जिनसे जैनियोंके कथनपर कोई सन्देह धोखा देनेका नहीं रह जाता है; बल्कि उसकी सत्यता दृढ़तासे सिद्ध होती है।" (देखो "Tne Jainas PP. 22-23)[1]।

मेजर-जनरल जे० जी० आर० फौर्लौंग (J. G. R. Forlong. F. R. S. E, F. R. A. S., M. A. D., etc, etc.) लिखते हैं—

"ईसासे पहले १५०० से ८०० वर्ष तक, बल्कि एक अज्ञात समयसे उत्तरीय पश्चिमीय और उत्तरीय-मध्य भारत तूरानियोंके, जिनको सुभीतेके लिए द्राविड़ कहा गया है, राज्य शासनमें था, और वहाँ वृक्ष, सर्प और लिंग-पूजाका प्रचार था......... किंतु उस समयमें भी उत्तरीय भारतमें एक प्राचीन और अत्यन्त संगठित धर्म प्रचलित था, जिसके सिद्धांत, सदाचार और कठिन तपश्चरणके नियम उच्च कोटिके थे। यह जैनधर्म था। जिसमेंसे ब्राह्मण और बौद्ध धर्मोंके प्रारम्भिक तपस्वियोंके आचार स्पष्टतया ले लिये गये हैं, (देखो Short Studies in the Science of Comparative Religion, PP. 243-244.)।

---

१. फ्रान्सके प्रसिद्ध विद्वान् डा० ए० गेरीनो अपनी जैन बिब्लीओग्रफीकी भूमिकामें लिखते हैं कि 'इसमें अब कोई सन्देह नहीं है कि पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं।...............इस कालमें जैन मतके २४ गुरु हुए हैं। ये सामान्य रूपसे तीर्थङ्कर कहलाते हैं। २३वें अर्थात् पार्श्वनाथजीसे हम इतिहास और यथार्थतामें प्रवेश करते हैं।"—अनुवादक

अब वह दावा कहाँ रहा कि जैन हिन्दू डिस्सेंटर्ज हैं और जैन धर्म बौद्ध धर्मका बच्चा है। पुराने प्राच्य विद्वानोंकी भूलको एक मुख्य अन्तिम प्रामाणिक लेखमें इस प्रकार दिखलाया है—(The Encyclopaedia of Religion and Ethics. Vol. VII, P. 465.)—

"यद्यपि उनके सिद्धांतोंमें मूलसे ही अन्तर है, तथापि जैन और बौद्ध धर्मके साधु हिन्दू धर्मके व्यतिरिक्त होनेके कारण, बाह्य भेषमें कुछ एकसे दिखाई पड़ते हैं और इस कारण भारतीय लेखकोंने भी उनके विषयमें धोखा खाया है। अतः इसमें आश्चर्य ही क्या है कि कुछ यूरोपीय विद्वानोंने जिनको जैन धर्मका ज्ञान अपूर्ण जैन धर्मपुस्तकोंके नमूनोंसे हुआ, यह आसानीसे समझ लिया कि जैन मत बौद्ध धर्मकी शाखा है, किन्तु तत्पश्चात् यह निश्चयात्मक रूपसे सिद्ध हो चुका है कि यह उनकी भूल थी और यह भी कि जैन धर्म इतना प्राचीन तो अवश्य ही है जितना कि बौद्ध धर्म।

बौद्धोंकी धर्म पुस्तकोंमें जैनोंका वर्णन बहुत करके मिलता है, जहां उनको प्रतिपक्षी मतानुयायी और पुराने नाम 'निगंथ' (निर्ग्रंथ) से नामाङ्कित किया गया है।................बुद्धके समयमें जैन गुरुको नातपुत्त और उनके निर्वाण स्थानको पावा कहा गया है। नात व नातिपुत्त जैनियोंके अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरका विशेषण था और इस प्रकार बौद्ध पुस्तकोंसे जैन धर्मके कथनका समर्थन होता है। इधर जैनियोंके धर्म ग्रन्थोंमें महावीर स्वामीके समकालीन वही राजा कहे गये हैं जो बुद्धके समयमें शासन करते थे, जो बुद्धका प्रतिपक्षी था। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया, कि महावीर बुद्धका समकालीन था और बुद्धसे उम्रमें कुछ बड़ा था। महावीर स्वामीके पावापुरमें निर्वाण होनेके पश्चात् बुद्ध जीवित रहे। बुद्ध तो बौद्ध धर्मका संस्थापक था। महावीर शायद जैन-धर्मका संस्थापक या उत्पत्ति करनेवाला नहीं था। जैनी उनको परम गुरु करके मानते हैं।... उनसे पूर्वगत पार्श्वनाथ, जो अन्तिम तीर्थंकरसे पहले हुए हैं, मालूम होता है कि जैन धर्मके संस्थापक प्रबल युक्तिके साथ कहे जा सकते हैं,....किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण-पत्रोंकी अनुपस्थितिमें हम इस विषयमें केवल तर्क-वितर्क ही कर सकते हैं।"

डाक्टर गौड़के दूसरे सिद्धान्तके विषयमें—कि जैनियोंने अपने धार्मिक तत्त्व और आचार बौद्ध धर्मसे लिये हैं—सत्यार्थ इसके नितान्त प्रतिकूल है। सबसे अन्तिम प्रमाणमें निम्न प्रकार दर्शाया गया है; देखो Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. VII, page 472—

"अब इस प्रश्नका उत्तर दिया जाना चाहिए जो प्रत्येक विचारवान् पाठकके मनमें उत्पन्न होगा। क्या जैनियोंका कर्म-सिद्धान्त....जैन-दर्शनका प्रारम्भिक और आवश्यकीय अङ्ग है? यह सिद्धान्त ऐसा गहन और कल्पित विदित होता है कि शीघ्र ही मनमें यह बात आती है यह एक आधुनिक आध्यात्मिक तत्त्व संग्रह है जो एक प्रारम्भिक धार्मिक दर्शनके मूलपर लगाया गया है, जिसका आशय जीव-र।।और सर्व प्राणियोंकी अहिंसाका प्रचार था। किन्तु ऐसे मतका प्रतिकार इस बातसे हो जाता है कि यह कर्म सिद्धान्त यदि पूर्ण ब्योरेवार नहीं तो मूल तत्त्वोंकी अपेक्षासे तो जैन धर्मके पुरानेसे पुराने ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है, और उन ग्रन्थोंके बहुतसे वाक्यों और पारिभाषिक शब्दोंमें इसका पूर्व अस्तित्व झलकता है। हम यह बात भी नहीं मान सकते कि इस विषयमें इन ग्रन्थोंमें पश्चात्के आविष्कृत तत्त्वोंका उल्लेख किया गया है। क्योंकि आस्रव, संवर, निर्जरा आदि शब्दोंका अर्थ तभी समझमें आ सकता है जब यह मान लिया जावे कि कर्म एक प्रकारका सूक्ष्म द्रव्य है जो आत्मामें बाहरसे प्रवेश करता है (आस्रव); इस प्रवेशको रोका जा सकता है या इसके द्वारोंको बन्द कर सकते हैं (संवर); और जिस कार्मिक द्रव्यका आत्मामें प्रवेश हो गया है, उसका नाश व क्षय आत्माके द्वारा हो सकता है (निर्जरा) जैन धर्मावलम्बी इन शब्दोंका उनके शाब्दिक अर्थमें ही प्रयोग करते हैं। और मोक्ष-मार्गका स्वरूप इसी प्रकार कहते हैं कि आस्रवके संवर और निर्जरासे मोक्ष होता है। अब यह शब्द इतने ही पुराने हैं जितना कि जैनदर्शन। बौद्धोंने जैन-दर्शनसे आस्रवका सारगर्भित शब्द ले लिया है। वह उसका प्रयोग उसी अर्थमें करते हैं जिसमें कि जैनियोंने किया है, किन्तु शब्दार्थमें नहीं क्योंकि बौद्ध यह नहीं मानते कि कर्म कोई सूक्ष्म द्रव्य है और न वह जीवका अस्तित्व ही मानते हैं कि जिसमें कर्मका प्रवेश हो सके। यह स्पष्ट है कि बौद्धोंके मतमें 'आस्रव'का शाब्दिक अर्थ चालू नहीं हैं और इस कारण इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि उन्होंने इस शब्दको किसी ऐसे धर्मसे लिया है कि जहां इसका प्रारम्भिक भाव प्रचलित था, अर्थात् जैनदर्शनसे ही लिया है....। इस तरह एकही युक्तिसे साथ ही साथ यह भी सिद्ध हो गया कि जैनियोंका कर्म-सिद्धान्त उनके धर्मका वास्तविक (निजका) और आवश्यक अङ्ग है, और जैनदर्शन बौद्ध धर्मकी उत्पत्तिसे बहुत अधिक पहिलेका है।"

यदि डाक्टर गौड़ बौद्धोंके शास्त्रोंके पढ़नेका कष्ट उठाते तो उनको यह ज्ञात हो गया होता कि बुद्धदेवने स्वतः जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर महावीर परमात्मन्का स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख किया है—

'भाइयो! कुछ ऐसे संन्यासी हैं (अचेलक, आजीविक, निगंथ आदि) जिनका ऐसा श्रद्धान है और जो ऐसा उपदेश देते हैं कि प्राणी जो कुछ सुख दुःख व

दोनोंके मध्यस्थ भावका अनुभव करता है वह सब पूर्व कर्मके निमित्तसे होता है। और तपश्चरण द्वारा पूर्व कर्मोंके नाशसे और नये कर्मोंके न करनेसे, आगामी जीवनमें आस्रवके रोकनेसे कर्मका क्षय होता है और इस प्रकार पापका क्षय और सब दुःखका विनाश है। भाइयो, यह निर्ग्रंथ [जैन] कहते हैं....मैंने उनसे पूछा क्या यह सच है कि तुम्हारा ऐसा श्रद्धान है और तुम इसका प्रचार करते हो.... उन्होंने उत्तर दिया....हमारे गुरु नातपुत्त सर्वज्ञ हैं....उन्होंने अपने गहन ज्ञानसे इसका उपदेश किया है कि तुमने पूर्वमें पाप किया है, इसको तुम इस कठिन और दुस्सह आचारसे दूर करो। और मन वचन कायकी प्रवृत्तिका जितना निरोध किया जाता है उतने ही आगामी जन्मके लिए बुरे कर्म कट जाते हैं....इस प्रकार सब कर्म अन्तमें क्षय हो जायेंगे और सारे दुःखका विनाश होगा। हम इससे सहमत हैं" (मज्झिम निकाय। २/२१४ व १। २३८; The Encyclopaedia of Religion and Ethics, Val. II, page 70).

उपर्युक्त वाक्योंमें पूर्ण उत्तर निम्न बातोंका मिलता है—

(१) परमात्मा महावीर मनोकाल्पनिक नहीं वरन् एक वास्तविक ऐतिहासिक व्यक्ति हुए हैं, और (२) वह बुद्धके समकालीन थे। मेरी रायमें इस बातके अप्रमाणित करनेके लिए कि जैनियोंने अपने तत्त्व और धार्मिक आचार बौद्धोंसे लिए और जैनधर्म ईसाकी छठी शताब्दीमें उत्पन्न हुआ और वह हिन्दू और बौद्ध धर्मका समझौता है केवल इतना ही पर्याप्त है।

इस मतके सिद्ध करनेके लिए कि जैनी हिन्दू धर्मके अन्तर्गत भिन्न श्रद्धानी (डिस्सेंटर्ज) हैं, न डाक्टर गौड़ने, न और किसीने नाम मात्र भी प्रमाण दिया है। यह केवल एक कल्पना ही है जो पुराने समयके योरोपीय लेखकोंके आधार पर खड़ी की गई है जिनकी जानकारी धर्मके विषयमें करीब करीब नहींके बराबर ही थी और जिनके विचार वैदिक धर्म और अन्य भारतीय धर्मोंके विषयमें बच्चों और मूर्खोंके से हास्योत्पादक हैं। यह सत्य है कि ऐतिहासिक पत्रों और शिला-लेखोंके अभावमें, जो सामान्यतः ईस्वी सन् ३०० वर्षसे अधिक पहिलेके नहीं मिलते हैं, कोई स्पष्ट साक्षी किसी ओर भी नहीं मिलती; किन्तु भिन्न धर्मोंके वास्तविक सिद्धान्तों और तत्त्वोंके अन्तर्गत साक्षी इस विषयमें पूर्ण प्रमाणरूप है। परन्तु प्रारम्भके अन्वेषकोंको इस प्रकारकी खोजकी पथ-रेखा पर चलनेकी योग्यता न थी। और इस मार्गको उन्होंने लिया भी नहीं। मैंने अपनी प्रैक्टीकल पाथ (Practical Path) नामक पुस्तके परिशिष्टमें, जो ५८ पृष्ठोंमें लिया गया है, जैन और हिन्दु धर्मका वास्तविक सम्बन्ध प्रगट किया है और इसी विषयको अपनी की ऑफ नौलेज (Key of Knɔwledge) नामकी पुस्तकमें (देखो दूसरी

आवृत्ति पृष्ठ १०६८ से १०८०) और Confluence of Opposites नामके ग्रन्थमें (विशेष करके अन्तिम व्याख्याको देखो) इस विषयको अधिकतया स्पष्ट किया है। इन ग्रन्थोंमें यह स्पष्ट करके दिखलाया गया है कि जैन धर्म सबसे पुराना मत है और जैनधर्मके तत्त्व भिन्न भिन्न दर्शनों और मतोंके आधारभूत हैं। मैं विश्वास करता हूँ कि जो कोई कषाय और हठको छोड़कर Cofluence of Opposites नामकी मेरी पुस्तकको पढ़ेगा और उसके पश्चात् उन शेष पुस्तकों-को पढ़ेगा जिनका उल्लेख किया गया है वह इस विषयमें मुझसे कदापि असहमत न होगा। जो लोग जैनियोंको हिन्दू धर्मच्युत भिन्नमतावलम्बी (डिस्सेंटर्ज) कहते हैं उनकी युक्तियाँ निम्न प्रकार हो सकती हैं—

१—यह कि शान्ति, जीव दया, पुर्नजन्म, नरक, स्वर्ग, मोक्षप्राप्ति और उसके उपाय विषयोंमें जैनियोंके धार्मिक विचार ब्राह्मणोंकेसे हैं।

२—जाति-बन्धन दोनोंमें समान रूपमें हैं।

३—जैन हिन्दु देवताओंको मानते हैं; और उनकी पूजा करते हैं। यद्यपि वह उनको नितान्त अपने तीर्थंकरोंके सेवक समझते हैं।

४—जैनियोंने हिन्दु धर्मकी बेहूदगियोंको और भी बढ़ा दिया है। यहाँ तक कि उनके यहाँ ६४ इन्द्र और ३२ देवियाँ हैं।

अपने हिन्दु कोडके पृष्ठ १८०-१८१ पर महाशय गौड़ने एल्फिन्स्टन की सम्मतिके आधारभूत इन्हीं युक्तियोंको उद्धृत किया है। किन्तु यह युक्तियाँ दोनों पक्षमें प्रबल पड़ती हैं। क्योंकि जब 'क' व 'ख' दर्शनोंमें कुछ विशेष बातें एक सी पाई जावें तो निश्चयतः यह नहीं कह सकते कि 'क' ने 'ख' से लिया है और 'ख' ने 'क' से नहीं। यह हो सकता है कि इन बातोंको जैनियोंने हिन्दुओंसे लिया हो, लेकिन यह भी हो सकता है कि हिन्दुओंने अपने धर्मके आधारको जैनियोंसे लिया हो। केवल सादृश्य इस बातके निर्णयमें पर्याप्त नहीं है। और इन सादृश्योंमें भी जहाँ तक कि इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण जीवदयाका सम्बन्ध है। मैं कह सकता हूँ कि अहिंसाको हिन्दू धर्मका चिह्न उस प्रकारसे नहीं कह सकते जिस प्रकार वह जैन धर्मका लक्षण है; क्योंकि "अहिंसा परमो धर्मः" तो जैन धर्मका आदर्श वाक्य ही रहा है।

तीसरी बात कि जैनी हिन्दू देवताओंको मानते और पूजते हैं वाहियात है। इसमें सचका आधार कुछ भी नहीं है। एल्फिन्स्टनने १-२ दृष्टान्त ऐसे पाये होंगे और उसीसे उन्होंने यह समझ लिया कि सामान्यतया जैनी लोग हिन्दू देवताओंको मानते हैं। ऐसे दृश्य प्रत्येक धर्ममें पाये जाते हैं। हिन्दू जनता और विशेषकर स्त्रियाँ आजकल मुसलमानोंके ताजियों और पीरोंकी दर्गाहोंको पूजते हैं। किन्तु

क्या हम कह सकते हैं कि कतिपय व्यक्तियोंके इस प्रकार अपनी धर्म-शिक्षाके विरुद्ध आचरण करनेसे सर्व हिन्दू "मुसलिम डिस्सेन्टर्ज" हो गये ?

चौथी युक्ति सबसे भद्दी है। उसका आधार इस कल्पना पर है कि हिन्दू-धर्म बेहूदा है और जैनियोंने उसकी बेहूदगीमें और भी अधिकता कर दी है। मुझे विश्वास है कि हिन्दू इससे सहमत न होंगे।

सच तो यह है कि जिस बातको मिस्टर एल्फिन्स्टन वाहियात समझते हैं वह स्वर्गके शासक देवताओंकी संख्या है जो इन्द्र कहलाते हैं। जैन धर्ममें इन्द्रोंकी संख्या ६४* है और देवांगनाओंकी संख्या भी नियत है। यदि यह माना जाय कि वास्तवमें नरक और स्वर्गका अस्तित्व ही नहीं है तो यह कथन निस्सन्देह वाहियात होगा। किन्तु जैनियोंका श्रद्धान है कि यह कथन उनके सर्वज्ञ तीर्थंकरका है और वह एक ऐसे लेखकके कहनेसे जो स्वपरधर्मसे अनभिज्ञ है अपने श्रद्धानसे च्युत न होंगे।

अब वह इन्द्र जिसका उपाख्यान हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें स्थान स्थान पर है स्वर्गका शासक नहीं है किन्तु जीवात्माका अलंकार (रूप-दर्शक) है (देखो Confluence of Opposites व्याख्यान ५)। यदि एल्फिन्स्टन और वह अन्य व्यक्ति जिन्होंने झटपट यह अनुमान कर लिया कि जैनी हिन्दू डिस्सेन्टर्ज थे ऋग्वेदके अर्थको समझनेका प्रयत्न करते तो वह यह जान लेते कि वह ग्रन्थ एक गुह्य भाषामें बनाया गया है कि जो बाह्य संस्कृत शब्दोंके नीचे छिपी हुई है।[1] आधुनिक जनता इस गुह्य भाषासे नितान्त अनभिज्ञ है। यद्यपि वही होली-बाइबिल, जैन्ड-अवस्था और कुरान समेत करीब-करीब सभी धर्मग्रन्थोंकी वास्तविक भाषा है। किन्तु जैन धर्म किसी गुह्य भाषामें नहीं लिखा गया। और न उसमें अलंकारयुक्त देवी देवताओंका कथन है।

अब वह युक्ति जो जैन मतको हिन्दू मतसे अधिक प्राचीन सिद्ध करती है, यह है कि घटना अलंकारसे पहिले होती है, अर्थात् वैज्ञानिक ज्ञान अलंकाररूपी सिद्धान्तोंसे पूर्व होता है। बात यह है कि जैन ग्रन्थ और वेद दोनोंमें प्रायः एक ही बात कही गई है, किन्तु जैन ग्रन्थोंकी भाषा स्पष्ट है और वेदोंका कथन गुप्त शब्दोंमें है जिनको पहिले समझ लेनेकी आवश्यकता होती है। मैंने इस बातको अपनी पुस्तक कोन्फ्लुएन्स ओफ ओप्पोजिट्स (Confluence of Opposites)

---

* दिगम्बर मतानुसार इन्द्रोंकी संख्या सौ है।

१. उपर्युक्त पुस्तकोंके अतिरिक्त देखो दि परमेनेन्ट हिस्ट्री ऑफ भारतवर्ष और रामायण।

और प्रैक्टीकल पाथ (Practical Path) के परिशिष्टमें स्पष्ट कर दिया है और इस कथनको भिन्न मतोंके पूज्य ग्रन्थोंसे दृष्टान्त ले लेकर दर्शा दिया है। दुर्भाग्यवश एल्फिन्स्टनको स्वपरधर्मकी गुप्त भाषाका ज्ञान ही न था और जो मनमें आया वह कह गया। फौरलौंग (Forlong) ने यह दिखला दिया है कि ब्राह्मणोंका योगाभ्यास जैनियोंके तपश्चरणसे किस प्रकार लिया गया (देखो शौर्ट स्टडीज इन कम्पैरेटिव रिलीजन : (Short Studies in Comprative Religion)।

जिन नजीरोंका डॉ० गौड़ने उल्लेख किया है उनमें १० बम्बई हाईकोर्ट रिपोर्ट पृष्ठ २४१-२६७ अपनी किस्मका सबसे प्रधान नमूना है। यह फैसला सन् १८७३ में हुआ जब कि पुरानी भूलें पूर्णतया प्रचलित थीं। हम मानते हैं कि विद्वान् न्यायाधीशोंने अपने ज्ञानदीपकोंकी सहायतासे विचारपूर्वक न्याय किया, किन्तु उनके ज्ञानदीपक ठीक नहीं थे। उन्होंने एलफिन्स्टनके कथनका (जो हिन्दु कोडमें उल्लिखित है) पृष्ठ २४७, २४८, २४९ पर उल्लेख किया; और कुछ फौजी यात्रियोंके विवरण और कुछ और छोटे छोटे ग्रंथोंका उल्लेख किया; और अन्तमें पादरी डाक्टर विल्सनकी सम्मति ली जिनको वह समझते थे कि पाश्चात्य भारतकी भिन्न-भिन्न जातियों और उनके साहित्य और रीतियोंका इतना विस्तार-रूप ज्ञान था जितना किसी भी जीवित व्यक्तिको, जिसका नाम सहजमें ध्यानमें आ सके, हो सकता है।

डॉक्टर विल्सनकी सम्मति यह थी कि वह जैन जातिकी पुस्तकोंमें अथवा हिन्दू लेखकोंके ग्रन्थोंमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं जानते थे जिससे उस रिवाजकी सिद्धि हो सके जो उस मुकदमेमें वादी पक्ष प्रतिपादन करते थे। उन्होंने यह भी कहा कि उनको जैन जातिके एक यति और उसके ब्राह्मण सहायकों (Assis-tants) ने यह बतलाया था कि वह लोग भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं जानते थे; और दत्तक पुत्रके विषयमें हिन्दू धर्मशास्त्र ही समानतया आधारभूत था। हाईकोर्टने इस बातका भी सहारा लिया कि विवाह संस्कार आदि बहुत सी बातोंमें जैनी लोग ब्राह्मणोंकी सहायता लेते हैं। इन्होंने कोलब्रुक विल्सन और अन्य लेखकोंका भी उल्लेख किया है जो उपर्युक्त युक्तियोंके आधार पर एल्फिन्स्टनसे सहमत हैं। विदित होता है कि जैन ग्रन्थ पेश नहीं किये गये। यद्यपि उनमेंसे कुछके नाम जैसे वर्धमान (नीति), गौतम प्रश्न, पुनः वचन (Poonawachun) आदि लिये गये थे (देखो पृष्ठ २५५-२५६)।

महाराज गोविन्दनाथ राय बनाम गुलाबचन्द वगैरह कलकत्ताके मुकदमेमें सन् १८३३ में इनमेंसे कुछके हवाले प्रगट रूपमें दिये गये थे। (देखो ५ सदर

दीवानी रिपोर्ट पृष्ठ २७६) इस मुकदमेका उल्लेख हाईकोर्टकी तजबीजमें है और मिस्टर स्टीलकी "हिन्दू कास्टस" नामका पुस्तकका भी। मिस्टर स्टीलने दिखलाया है कि जैनियोंके शास्त्र हिन्दुओंसे भिन्न हैं, किन्तु हाईकोर्टने उन शास्त्रोंके पेश होनेके लिए आग्रह नहीं किया और स्वतः उनको नहीं मंगवाया। जिस पक्षके कथनकी पुष्टि हिन्दू शास्त्रसे होती थी वह तो अदालतको इस विषयमें सहायता देनेका प्रयत्न स्वभावतः न करता, और अनुमानतः विरोधी पक्षका न्यायालयोंमें पेश करनेके लिए कठिनतासे प्राप्त होनेवाली हस्तलिखित जैन ग्रन्थोंकी प्राप्ति दुःसाध्य हुई होगी।

खेद है कि आधुनिक न्यायाधीश, पुराने समयके तिरस्कृत "काजी" के समान अपना कर्तव्य यह नहीं समझता कि उचित निर्णय करनेके लिए सामग्रीको संग्रहीत करे; वह कभी कभी उपस्थित सामग्री पर तो अधिक छान-बीन कर डालता है, किन्तु सामग्री उसके समक्ष संचित करनी ही पड़ती है। पश्चात्के मुकदमात पर उसके निर्णयकी ज्योतिका प्रकाश पड़ता है और एक पूर्व निश्चित प्रमाणका उल्लङ्घन कराना किसी प्रकारसे भी सहज कार्य नहीं है जैसा कि प्रत्येक वकील जानता है।

जैनियोंने तो मुसलमानोंके आते ही दूकान बन्द कर दी और करीब करीब नामकी तख्ती भी उठा दी। इस आक्रमण करनेवालोंने जैन धर्मके विरुद्ध ऐसा तीव्र द्वेष किया कि उन्होंने जैन मन्दिरों और शास्त्रोंको जहाँ पाया नष्ट कर दिया। साधारणतः लोग जैनियोंको नास्तिक समझते थे (यद्यपि यह एक बड़ी भूल थी) और इसी कारणसे सम्भवतः उनको मुसलमान आक्रमण करनेवालोंके हाथसे इतना कष्ट सहना पड़ा। जो कुछ भी सही, परिणाम यह हुआ कि जैनियोंने अपने शास्त्रभण्डार रक्षार्थ भूगर्भमें छिपा दिये, और वह ग्रन्थ वहाँ पड़े पड़े चूहों और दीमकोंका भोज्य बन गये और गलकर धूल हो गये।

पिछले दुखद अनुभवका परिणाम यह हुआ कि मुगल राज्यके पश्चात् जो विदेशी अधिकार हुआ, जैनी उसकी ओर भी भयभीत होकर तिरछी आँखसे देखते रहे, और यह केवल पिछले २० वर्षकी बात है कि जैन-शास्त्र किसी भाषामें प्रकाशित होने लगे हैं। मुझे सन्देह है कि कोई जैनी आज भी एक हस्तलिखित ग्रन्थको मन्दिरजीमेंसे लेकर अदालतके किसी कर्मचारीको दे दे। कारण कि शास्त्र विनयका उसके मनमें बहुत बड़ा प्रभाव है और सर्वज्ञ वचनकी अबज्ञा और अविनयसे वह भयभीत है। जैन नीतिग्रंथ ब्राह्मणीय प्रभावसे नितांत विमुक्त हैं, यद्यपि जैन कभी कभी ब्राह्मणोंकी अपने शास्त्रोंके बांचने अथवा धार्मिक तथा लौकिक कार्योंके लिए सहायता लेते हैं।

मेरी समझमें यह नहीं आता कि इस बातसे कि जैनी ब्राह्मणोंसे काम लेते हैं यह कैसे अनुमान किया जा सकता है कि जैन "हिन्दू डिस्सेंटर्ज" हैं। क्या ऐसी आशा की जा सकती है कि ऐसी दो समाजोंमें जो एक ही देशमें अज्ञात प्राचीन कालसे साथ साथ रहती सहती चली आई हैं, नितांत पारस्परिक व्यवहार न होंगे। बात यह है कि जैन धर्मका संख्या-वर्धकक्षेत्र विशेष करके हिन्दू समाज ही रहा है, और गत समयमें जैनियों और हिन्दुओंमें पारस्परिक विवाह बहुत हुआ करते थे। ऐसे विवाहोंसे उत्पन्न सन्तान कभी एक धर्मको कभी दूसरे धर्मको मानती थी, और कभी उनके आचार-विचारमें दोनों धर्मोंके कुछ कुछ सिद्धांत सम्मिलित रहते थे, और इस कारणसे अनभिज्ञ विदेशी तो क्या अल्प-बुद्धि स्वदेशी भी भ्रममें पड़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं जैन धर्मानुयायी बिलकुल नहीं रहे, किन्तु जैन मन्दिर वहां अभी पाये जाते हैं। उन मन्दिरोंके दैनिक पूजा-प्रबन्धके वास्ते ब्राह्मण पुजारीको रखना ही पड़ता है। इन सब बातोंसे ५०-६० वर्ष पूर्व तो गैर जानकार विदेशी अनभिज्ञ हो सकता था, किन्तु आजकलके एक भारतीय ग्रन्थकर्त्ताकी ऐसी अनभिज्ञता क्षन्तव्य नहीं है। उसको तो अपने विचार प्रकाशित करनेके पूर्व इन सब बातोंको विशेष करके भले प्रकार अध्ययन करना उचित है।

× × ×

अब केवल शेष इतना ही रह गया है कि इस नियमकी—कि हिन्दू-लॉ जैनियोंपर लागू होगा, यदि उनका कोई विशेष रिवाज प्रमाणित न हो—प्रारम्भिक इतिहासकी खोज की जावे। महाराजा गोविन्दनाथ राय ब० गुलाबचन्द्र वगैरहके मुकदमेका जिसका फैसला सन् १८३३ में प्रेसीडेन्सी सदर कोर्ट बंगालने किया और जिसमें जैन-लॉ व जैन शास्त्रोंका स्पष्टतया उल्लेख हुआ, पहिले ही हवाला दिया जा चुका है। अनुमानतः यह जैनियोंका सबसे पहिला मुकदमा है जो छपा है। मैंने उस मुकदमेपर भी जो बम्बई हाईकोर्ट रिपोर्टस्की १०वीं जिल्दके सफे २४१ से २६७ पर उद्धृत है एक हद तक रायजनी कर ली है।

मुसम्मात चिम्नीबाई ब० गट्टोबाई मुकदमा जिसका फैसला सन् १८५३ ई० में हुआ (नजायर्स सदर दीवानी अदालतके सूबे जात मगर्वी व शुमाली ६३६ उल्लिखित ६ एन० डबल्यु० पी० हाईकोर्ट रिपोर्टस् सफा ३९४) इनके पश्चात् हमारी तवज्जहका अधिकारी है। इस मुकदमेमें स्पष्टतया देखा जा सकता है कि जैनियोंके हिन्दू डिस्सेण्टर्स (Dissenters) समझे जानेका फल कितना बुरा जैन-लॉ के लिए हुआ। क्योंकि उसमें यह सिद्ध किया गया कि "जैनियोंके झगड़ोंमें जैन-लॉ के निर्णयार्थ अदालतके पण्डितकी सम्मति लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है जब

कि एक ऐसे फिर्केके सिद्धान्तके विषयमें जो स्वीकृत रीतिसे हिन्दू समाजमेंसे निकला (Dissenting sect) है उसकी सम्मतिका आदर एक पक्षवाला नहीं करता है, बल्कि मुद्दइयाके ऊपर इस बातका भार डालता है कि वह असली मतके कानूनसे अपने फिर्केकी स्वतन्त्रताको जिस प्रकार उससे हो सके प्रमाणित करे। और यह बात अमर वाकयाती है।"

इस अन्तिम वाक्यका तात्पर्य यह है कि यदि जिलेकी दोनों अदालतें (इब्तिदाई व अपील) इस विषयमें सहमत हों कि मुद्दइया हिन्दू-लॉ से अपने फिर्केकी स्वतन्त्रताके प्रमाणित करनेमें असमर्थ रही तो हाईकोर्ट ऐसी मुत्तिफिक तजबीजके विरुद्ध कोई उजर नहीं सुनेगी। तिसपर भी इस मुकदमेमें यह करार दिया गया है कि जैनियोंका यह हक है कि "वह अपने ही शास्त्रोंके अनुसार अपने दायके झगड़ोंका निर्णय करा सकें।" फैसलेमें यह भी बताया गया है कि "जैनियोंके प्रमाणित नीति शास्त्रोंके न होनेके कारण अदालत इस बात पर बाध्य हुई कि साक्षीके आधार पर झगड़ेका निर्णय करे।"

मुकदमे हुलासराय ब० भवानी जो छापा नहीं गया है और जिसका फैसला ७ नवम्बर सन् १८५४ को हुआ था (इसका हवाला ६ एन० डब्ल्यु० पी० हाईकोर्ट रिपोर्टस्में पृष्ठ ३९६ पर है) फिर यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि जैनी किस लॉ के पाबन्द हैं। इसकी निस्बत तन्कीहें इन शब्दोंमें कायम की गई—

"आया श्रावगी कौम हिन्दू-लॉ को मानते हैं या नहीं? यदि वे हिन्दू लॉ के पाबन्द नहीं हैं तो क्या उनका कानून विधवाको पतिकी स्थावर सम्पत्तिमें अन्त-कालका हक देता है? आया श्रावगी कौमके नियमोंके अनुसार विधवा मालिक कामिल जायदादकी होती है, या उसका हक केवल जीवन पर्यंत ही है?"

दौराने मुकदमेमें न्यायाधीशको जैन शास्त्रोंके अस्तित्वका समाचार कुछ जैन गवाहों द्वारा, जिनका बयान कमीशन पर दिल्ली में हुआ, मालूम हुआ। मगर हाईकोर्टमें इस शहादत पर आक्षेप किया गया कि गवाहानने अपने बयान बिना सौगन्दके दिये थे। इसलिए वहाँसे मुकदमा फिर अदालत इब्तदाईमें नये सिरेसे सुने जानेके लिए वापिस हुआ। परन्तु अन्ततः पारस्परिक पञ्चायत द्वारा उसका फैसला हो गया। मगर जैन-लॉ के बारेमें यह आवश्यकीय बात फैसलेमें दर्ज है कि "धार्मिक विषयोंमें श्रावगी लोग अपने ही धर्मशास्त्रोंके नियमों पर कार्यबद्ध होते हैं।"

इसके पश्चात् एक मुकदमा सन् १८६० का है (मुन्नूलाल ब० गोकलप्रसाद जो नजायर सदर दीवानी अदालत एन० डब्ल्यु० पी० सन् १९६० में पृष्ठ २६३ पर प्रकाशित है और जिसका हवाला ६ एन० डब्ल्यु० पी० हाईकोर्ट रिपोर्टस

पृष्ठ ३९६ पर मिलता है।) इस मुकदमेमें पहिले पहिल यह तय हुआ था कि "अपनी फरीकैन (पक्षियों) के दायके झगड़े जैन-लॉ के अनुसार तै होने चाहिए, जिसका निर्णय श्रेष्ठतम साक्षीसे जो प्राप्त हो सके करना चाहिए।"

इस आग्रहके साथ यह मुकदमा अदालत अव्वलमें नये सिरेसे सुने जानेके लिए वापिस हुआ। जब फिर यह मुकदमा हाईकोर्टमें पहुँचा तो वहाँ पर दो पक्षियोंकी ओरसे यह मान लिया गया कि "श्रावगियोंकी कौमके कोई धार्मिक या नीतिके शास्त्र नहीं हैं जिसके अनुसार इस प्रकारके विषयोंका निर्णय पूर्ण रीतिसे हो सके।"

खेद! जैन शास्त्रोंकी दशा पर। जैनियोंके अपने शास्त्रोंके छिपा डालनेके स्वभावकी बदौलत हिन्दू वकील जो मुकदमेमें पैरवी करते थे जैन शास्त्रोंके अस्तित्वसे नितान्त ही अनभिज्ञ निकले। और तिस पर भी जैनियोंकी घोर निद्रा न खुली।

इसके पश्चात् बिहारीलाल ब० सुखवासीलालका मुकदमा जो सन् १८६५ ई० में फैसला हुआ ध्यान देने योग्य है। इस मुकदमेमें यह तय हुआ कि "जैन लोगोंके खानदान हिन्दू शास्त्रोंके पाबन्द नहीं हैं।" पश्चात्के मुकदमे शम्भूनाथ ब० ज्ञानचन्द (१६ इलाहाबाद० ३७९—३८३ में इस निर्णयका अर्थ यह लगाया गया कि यह परिणाम माननीय होगा, यदि कोई रिवाज साधारण शास्त्र अर्थात् कानूनको स्पष्टतया तरमीम करता हुआ पाया जावे। परन्तु जहाँ ऐसा रिवाज नहीं है वहाँ हिन्दू-लॉ के नियम लागू होंगे।

इसके पश्चात्का मुकदमा बङ्गालका है (प्रेमचन्द पेपारा ब० हुलासचन्द पेपारा—१२ विक्ली रिपोर्टर पृष्ठ ४९४)। इस मुकदमेकी तजवीजमें भी जैन शास्त्रोंका उल्लेख है और अदालतने तजवीज फरमाया है कि "न तो हिन्दू-लॉ में और न तो जैन शास्त्रों हीमें कोई ऐसा नियम पाया जाता है कि जिसके अनुसार पिता अपने वयःप्राप्त (बालिग) पुत्रोंकी परवरिश करनेके लिए बाध्य कहा जा सके।" निस्सन्देह यह नितान्त वही दशा नहीं है कि जहाँ एक सीधे (Affirmative) रूपमें किसी बातका अस्तित्व दिखाया जावे, अर्थात् यह कि फलाँ शास्त्रमें फलाँ नियम उल्लिखित है, परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि अदालतने यह नहीं फरमाया कि जैनियोंका कोई शास्त्र नहीं है और न यह कि जैन लोग हिन्दू-लॉके पाबन्द हैं।

सन् १८७३ ई० में हमको फिर हीरालाल ब० मोहन व मु० भैरोके मुकदमेमें (जो छापा नहीं गया, परन्तु जिसका हवाला ६—एन० डब्ल्यु० पी० हाईकोर्ट रिपोर्टस पृष्ठ ३९८—४०० पर दिया गया है) जैन लॉ का पृथक् रूपसे अस्तित्व

मिलता है । इसको अदालत अपील जिलाने स्वीकार किया और इसकी निस्बत इन शब्दोंमें अपना फैसला फरमाया कि 'मुकदमाका निर्णय जैनी लोगोंके कानूनसे होगा हिन्दू-लॉकी जैनियों पर इससे अधिक पाबन्दी नहीं हो सकती जितनी योरोपियन खुदापरस्तोंपर हो सकती है ।''

मगर हाईकोर्टमें घटनाओंने अपना रूप बदला । बुद्धिमान जज महोदयोंने तजवीजमें लिखा है कि "अपीलान्टकी ओरसे यह बहस नहीं की जाती है कि हिन्दू-लॉ वहैसियत हिन्दू-लॉ के जैनियोंसे सम्बंधित है । परन्तु उनकी यह बहस है कि हिन्दू-लॉ और जैन लॉ में इस विषयकी निस्बत कोई अन्तर नहीं है कि विधवा किस प्रकारका अधिकार पतिकी सम्पत्तिमें पाती है ।" अन्ततः अदालत मातहतको कतिपय तनकीहें वापस हुई जिनमें एक तनकीह यह भी थी कि जैन लॉ के अनुसार विधवा किस प्रकारका अधिकार रखती है । अदालत अपील जिलाने फिर यही तजबीज फरमाया कि जैन-विधवा मालिक कामिल व अख्तियार इन्तकाल होती है ।

जैन मुद्दईने यहाँ भी यही शहादत पेश की थी कि हिन्दु-लॉ मुकदमेसे सम्बन्धित है । परन्तु जज महोदयने इस पर यह फैसला फरमाया कि "इन गवाहोंने जिरहमें इस बातको स्वीकार किया है कि वह कोई उदाहरण नहीं बता सकते हैं कि जहाँ हिन्दु-लॉके अनुसार निर्णय किया गया हो और कारणवश उनको यह मानना पड़ा कि ऐसे उदाहरण नहीं बता सकते हैं कि जहाँ पर हिन्दु-लॉ की पाबन्दी नहीं हुई ।" आगे अपील होने पर हाईकोर्टने निर्णय फरमाया कि इस बातके प्रमाणित करनेके लिए कि जैनियोंके लिए हिन्दु-लॉसे पृथकता करनी चाहिए शहादत अपर्याप्त है । और जैन-विधवाके अधिकार हिन्दु-विधवासे विरुद्ध नहीं हैं । हाईकोर्टने वाक़यात पर भी जजसे असम्मति प्रकट की और अपील डिगरी कर दिया ।

यह मुकदमा एक उदाहरण है उस दिक्कतका जो एक पक्षीको उठानी पड़ती है जब वह किसी रिवाजके प्रमाणित करनेके लिए विवश होता है । इस प्रकारका एक और मुकदमा छज्जूमल ब० कुन्दमलाल (पंजाब) ७० इन्डियन केसेज पृष्ठ ८३८ पर मिलता है । यह १९२२ ई० का है । आज कुछ भी सन्देह जैन-विधवाके अधिकारोंकी निस्बत नहीं हैं और सब अदालतें इस बातपर सहमत हैं कि वह मालिक कामिल बअख्तियार इन्तकाल होती है । मगर खेद ! कि जो शहादत मुद्दालेने मुकदमा जेरबहस (हीरालाल ब० मोहन व मु० भैरो) में पेश की थी वह अपर्याप्त पाई गई यद्यपि उसमें कुछ उदाहरण भी दिये गये थे और उनके विरोधमें कोई भी उदाहरण नहीं था ।

यह दशा वातावरणकी थी और यह सूरत कानूनकी उस समय जब कि सन् १८७८ ई० में प्रीवी कौंसिलके समक्ष यह विषय शिवसिंहराय ब० मु० दाखोके प्रसिद्ध मुकदमेके अपीलमें निर्णयार्थ पेश हुआ (मुकदमाकी रिपोर्ट १ इलाहाबाद पृष्ठ ६८८ व पश्चात्‌के पृष्ठोंपर है)। अब यह मुकदमा एक प्रमाणित नजीर है है कि प्रीवी कौंसिलके सब मुकदमात उचित रीतिसे होते हैं। मुकदमा मेरठके जिलेमें लड़ा था और अपील सीधी इलाहाबाद हाईकोर्टमें हुई थी। हाईकोर्टकी तजबीज छठी जिल्द एन० डब्ल्यु० पी० हाईकोर्ट रिपोर्टस्‌में ३८२ से ४१२ पृष्ठों पर उल्लिखित है।

मुद्दइयाका जो एक जैन-विधवा थी दावा था कि वह अपने पतिकी सम्पत्तिकी पूर्णतया अधिकारिणी है और उसको बिना आज्ञा व सम्मति किसी व्यक्तिके दत्तक लेनेका अधिकार प्राप्त है। जवाबदावामें इन बातोंसे इन्कार किया गया था और यह उज्र उठाया गया था कि जैन लोगोंका कानून उस नीतिशस्त्रसे जो हिन्दु-लॉ के नामसे विदित है विभिन्न नहीं है। पहिले एक केवल कानूनी दोषके कारण दावा अदालत अव्वलमें खारिज हुआ मगर अपील होनेपर हाईकोर्टसे पुनः निर्णयके लिए वापस हुआ।

हाईकोर्टसे दोनों पक्षियोंके वकीलोंने प्रार्थना की थी कि वह उचित हिदायत मुकदमाके निर्णयार्थ अदालत इब्तदाईको करे, और बुद्धिमान् जज महोदयोंने इन हिदायातके दौरानमें फरमाया कि "जैनियोंका कोई लिखा हुआ कानून दाय का नहीं है" और उनके कानूनका पता केवल रिवाजोंके एकत्रित करनेसे जो उनमें प्रचलित हों लग सकता है। जज मातहत महोदयने इन हिदायतों पर पूरा-पूरा अमल किया, और बड़ी जाँचके पश्चात् दावाको डिग्री किया।

अपीलमें हाईकोर्टने ब्यौरेदार और मेहनतके साथ कुल नजीरोंका निरीक्षण किया और अपना हुक्म सुनाया। और शायद उस दशामें जिसमें मुकदमा लड़ा था और कोई हुक्म सम्भव न था। हम एकदम यह कह सकते हैं कि निर्णय जैननीति नियमोंके अनुसार है और इसकी अपेक्षा किसीको आक्षेपका अवसर नहीं मिल सकता है। परन्तु आवश्यकीय ध्यान देने योग्य बातें इस फैसलेकी युक्तियाँ हैं और यह कि इसका जैन-लॉके अस्तित्व व उसकी स्वतन्त्रताके विषयमें क्या प्रभाव पड़ा, और आगामी समयमें पड़नेका गुमान हो सकता है।

इस फैसलेमें दो भारी गल्तियाँ वाकयातकी हाईकोर्टने की हैं। पहिली तो यह कल्पना है कि "ग्यारह बारह शताब्दियोंसे अधिकसे जैनी लोग वेदोंके मतसे पृथक् हो गये।" जो प्रारंभिक योरोपियन खोजियोंकी जल्दबाजीका परिणाम है, और जिनकी सम्मतिसे अब भारतीय खोजका प्रत्येक सच्चा जानकार असहमत

होता है (देखो इन्साइक्लोपीडिया ओफ रिलीजन व ईथिक्स जिल्द ७ पृष्ठ ४६५)। यह गलत राय भगवानदास तेजमल व० राजमल (१० बम्बई हाईकोर्ट रिपोर्टस् पृष्ठ २४१) के मुकदमेमें एल्फिस्टनकी हिस्ट्री और कुछ अन्य युक्तियोंके आधारपर मान ली गई थी और पश्चात्के कुछ मुकदमातमें दोहराई भी गई थी। थी मुख्य अंश इस गल्तीका यह है कि जैन मजहब ईस्वी संवत्की छठी शताब्दीमें बुद्ध मतकी शाखाके तौरपर प्रारम्भ हुआ और बारहवीं शताब्दीमें उसका पतन हुआ। परन्तु जैसा कि पहिले कहा गया है आज यह बात नितांत निर्मूल मानी जाती है।

दूसरी गलती जो इस तजवीजमें हुई वह यह है कि जैनियोंके कोई शास्त्र नहीं हैं। आज हम इस प्रकारकी व्याख्या पर केवल हँस पड़ेंगे। पचास वर्ष हुए जब कदाचित् इसके लिए कुछ मौका हो सकता था, यदि कुछ शास्त्रोंके नाम किन्हीं मुकदमातमें न ले दिये गये होते। इससे अदालतके दिलमें रुकावट होनी चाहिए थी। तो भी यह कहना आवश्यकीय है कि बुद्धिमान् जज महोदयोंने पूरी पूरी छान-बीनकी कोशिश की थी और तिसपर भी यदि जैन-लॉ अप्राप्त रूपसे ही विख्यात रहा तो ऐसी दशामें यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे बिला लिहाज समयके उसके उपलब्धकी प्रतीक्षा करते रहते। स्वयं जैनियोंको अन्यायका बोझ अपने कन्धोंपर उठाना चाहिए। यह नहीं भूलना चाहिए कि तीसरी तनकोह जो इस मुकदमेमें हुई थी इन शब्दोंमें थी—"जैनी लोग किस शास्त्र या टेक्स्ट बुक (Text-book) के पाबन्द हैं?" इस तनकीह के अन्तर्गत हर दो पक्षवालोंको सुअवसर प्राप्त था कि वह जैन-लॉका अस्तित्व आसानीसे प्रमाणित कर सकें। परन्तु एक पक्षको तो प्रलोभनने अन्धा बना दिया था, और दूसरेको उन कुल बाधाओंका सामना करना पड़ता था जिन्होंने अभी तक पूर्णतया जैन शास्त्रोंको अदालतोंमें पेश होनेसे रोक रक्खा है।

प्रीवी कौंसिलमें बुद्धिमान् बैरिस्टरोंसे, जिन्होंने मुकदमाकी पैरवी की, यह आशा नहीं हो सकती थी कि वें जैन-लॉके अस्तित्वके बारेमें अधिक जानकारी रखते होंगे। और रेस्पान्डेन्टके कौंसिलके हकमें तो हिन्दुस्तानकी दोनों अदालतोंकी तजवीजें सहमत थीं फिर वह क्यों जैन-लॉकी सहायताको अपने प्राकृतिक कर्तव्यके विरुद्ध चलकर आता। रहा अपीलाण्टका कौंसिल। मगर उसके लिये बयान तहरीरीके विरुद्ध जैन-लॉके अस्तित्व और उसकी स्वतन्त्रताकी घोषणा करना अपने मवक्किलके अभिप्रायोंकी विरुद्धता करना होता।

इस दशामें बहस मुख्यतः किन्हीं किन्हीं कानूनी नियमोंपर होती रही जिनका सम्बन्ध रिवाजसे है और शहादतकी तुलनासे जिससे रिवाज प्रमाणित किया जाता

है। तो भी प्रीवी कौंसिलके लाट महोदयोंने कुछ बड़े गम्भीर जुमले इस सिल-सिलेमें लिखे हैं कि जैनियोंका अधिकार है कि वह अपनी ही नीति व रिवाजोंके अनुसार कार्यबद्ध हों। पृष्ठ ७०२ पर वह फरमाते हैं—

"उन्होंने (हाईकोर्टके जजोंने) भूतपूर्व नजीरोंके अध्ययनसे यह परिणाम निकाला कि वह इस परिणामके विरुद्ध नहीं थे कि किन्हीं किन्हीं विषयोंमें जैनी लोग मुख्य रिवाज व नीतियोंके बद्ध हों, और यह कि जब यह निश्चयात्मक ढङ्गसे प्रमाणित हो जावें तो उनको लागू करना चाहिए। अपीलान्टके सुयोग्य कौंसिलने जिसने इस मुकदमाकी बहस प्रीवी कौंसिलके लाट महोदयोंके समक्ष की इस परिणामको सत्यतामें किसी प्रकारका विवाद उठानेके योग्य अपनेको नहीं पाया।

यह अवश्य आश्चर्यजनक होता यदि ऐसा पाया जाता कि हिन्दुस्तानमें जहाँ ब्रिटिश गवर्नमेंटकी न्याय युक्तिमें कि जिसके अनुसार सार्वजनिक ढङ्गसे साधारण कानूनसे चाहे वह हिन्दुओंका हो या मुसलमानोंका एक बृहत् पृथकत्वकी गुञ्जा-इश रक्खी गई है। अदालतोंने जैनियोंकी बड़ी और धनिक समाजको अपने मुख्य नियमों और रिवाजोंके अनुसरण करनेसे रोक दिया हो, जबकि यह नियम व रिवाज यथेष्ट साक्षीके आधारपर पेश किये जा सकते हों और उचित रीतिसे बयान किये जा सकें, और सार्वजनिक आपेक्षके योग्य नहीं।"

इस प्रकार यह मुकदमा निर्णय हुआ जो उस समयसे बराबर नजीरके तौरपर प्रत्येक अवसरमें हिन्दुस्तानी अदालतोंमें जहाँ जैनी वादी प्रतिवादीमें यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह किस कानूनसे बद्ध हैं पेश होता है। यह कहना आवश्य-कीय नहीं है कि प्रीवी कौंसिलके फैसले उच्चतम कोटिके प्रमाणित नज़ायर होते हैं जो निःसन्देह उनके लिए उचित मान है, इस अपेक्षासे कि वह एक ऐसे बोर्ड (अदालत) के परिणाम होते हैं कि जिसमें संसारके योग्यतम न्यायविज्ञ व्यक्तियोंमेंसे कुछ न्यायाधीश होते हैं। और यह भी कहना अनावश्यकीय है कि प्रीवी कौंसिलके लाट महोदय जो युक्तियोंके वास्तविक गुणोंके समझनेमें कभी शिथिल नहीं प्रभा-वित हुए हैं आगामी कालमें पूर्णतया उन नये और विशेष हालात (घटनाओं) पर जो शिवसिंहराय ब० मु० दाखोके फैसलेकी तिथिके पश्चात्से प्रमाणित हुए हैं।

संक्षेपतः यह राय कि जैनी हिन्दु-लॉ अनुयायी हैं इस कल्पनापर निर्धारित है कि जैनी हिन्दु मतसे विभिन्न होकर पृथक् हुए हैं। मगर यह कल्पना स्वयं किस आधारपर निर्धारित है? केवल प्रारम्भिक अर्ध योग्यता प्राप्त योरोपियन खोजियोंके भूलपूर्ण विचारके हृदयमें बने रहनेवाले प्रभाव पर, और इससे न न्यून पर न अधिक पर कि जैनियोंका छठी शताब्दी ईस्वी सन्में आरम्भ हुआ जबकि बुद्ध मतका पतन प्रारम्भ हो गया था और जब प्रचलित धर्म हिन्दु मत था। अब

यह गलती दूर हो गई है। जाकोबी आदि पूर्वी शास्त्रोंके खोजी अब जैन मतको २७०० वर्षसे अधिक आयुका मानते हैं परन्तु अभी तक जैनी Dissentership (धर्मच्युत विभिन्न शाखा होनेवाले स्वरूप) से मुक्त नहीं हुए हैं।

यदि बुद्ध मतकी शाखा नहीं तो तुम हिन्दू मतसे मतभेद करके प्रादुर्भाव होनेवाले तो हो सकते ही हो! यह वर्तमान कालके योग्य पुरुषोंकी सम्मति है। इस सम्मतिके अनुमोदनमें प्रमाण क्या है? मगर हाँ बुद्धिमान्की सम्मतिके लिए प्रमाणकी आवश्यकता ही क्या है? आन्तरिक साक्षी पूर्णतः इसके विरुद्ध है और वास्तवमें एक ऐसे बुद्धिमान्की सम्मतिको अनुमोदनमें लिए हुए हैं जिसने वर्षोंकी छानबीनके पश्चात् सच्ची आश्चर्यजनक बातको ढूंढ निकाला (देखो शोर्ट स्टडीज इन दी साइन्स ओफ कम्पेरेरिव रेलीजन)[1] जैन मत और हिन्दू मतके पारस्परिक सम्बन्धके बारेमे तीन बातें सम्भव हो सकती हैं अर्थात्—

(१) जैन मत हिन्दू मतका बच्चा है।

(२) हिन्दू मत जैन मतका बच्चा है।

(३) दोनों तात्कालीन भिन्न धर्म हैं जो साथ साथ चलते रहे हैं जिनमेंसे कोई भी एक दूसरेसे नहीं निकला है।

इनमेंसे (१) केवल कल्पना है और उसके अनुमोदनमें कोई आंतरिक या बाह्य साक्षी नहीं है। (२) आंतरिक साक्षीपर निर्धारित और इस बातपर स्थिर है कि वेदोंका वास्तविक भाव अलङ्कारयुक्त है। और (३) वह आवश्यक परिणाम है जो उस दशामें निकलेगा जब किसी प्रबल युक्तिके कारण यह न माना जावे कि हिन्दू शास्त्रोंके भाव अलङ्कारयुक्त हैं। दुर्भाग्यवश आधुनिक खोजी हिन्दू शास्त्रोंके अलङ्कारित भावसे नितान्त ही अनभिज्ञ रहे और उनको वेदोंके वास्तविक भावका पता ही नहीं लगा। परन्तु इस विषयका निर्णय कुछ पुस्तकोंमें, जिनका पूर्व उल्लेख किया जा चुका है, किया गया है (देखो मुख्यतः दि की ऑफ नालेज व प्रैक्टिकल पाथ और कोन्फ्लुएन्स ऑफ ओपोजिट्स)। परन्तु यदि हम इस अलङ्कार-युक्त भावकी ओर दृष्टि न करें तो हिन्दू मत और जैन मतका किसी बातपर भी,

---

१. डा० हर्मन जाकोबी साहबने कांग्रेस आफ दी हिस्ट्री ऑफ ऑल रिलीज़न्स (सर्व धर्मोंके इतिहासकी काग्रेसके समक्ष जैन मतके विषयमें निम्नलिखित वाक्य कहे—'अन्तमें मुझे अपने विश्वासको प्रकट करने दीजिए कि जैन धर्म एक स्वाधीन मत है, जो अन्य मतमतान्तरोंसे नितान्त भिन्न और स्वतन्त्र है। और इसलिए वह भारतवर्षके दार्शनिक विचार और धार्मिक जीवनके समझनेमें अत्यन्त उपयोगी है।''

(जैनगजट [अंगरेजी] सन् १९२७ पृ० १०५—अनुवादक।

जो वास्तविक धर्म सिद्धांतोंसे सम्बन्ध रखती हो, सहयोग नहीं मिलेगा और दोनों विभिन्न और पृथक् होकर बहनेवाली सरिताओंकी भांति पाये जावेंगे, यदि एक ही प्रकारके सामाजिक सभ्यता और जीवनका ढङ्ग दोनोंमें पाया जावे।

अब जैन-लॉकी सुनिए ! ये शास्त्र जो एकत्रित किये गये हैं, जाली नहीं हैं। इनमेंसे कुछका उल्लेख भी आरम्भके दो एक मुकदमोंमें आया है यद्यपि इसमें न्यायालयोंका कोई दोष नहीं है यदि उनका अस्तित्व अब तक स्वीकार नहीं हो पाया है। जैनियोंने भी अपने धर्मको नहीं छोड़ा है और न हिन्दु मतको या हिन्दु-लॉको स्वीकृत किया है। ब्रिटिश ऐडमिन्स्ट्रेशनकी यह निष्पक्ष पोलिसी, कि सब जातियाँ और धर्म अपनी अपनी नीतियोंके ही बद्ध हों, जिसका वर्णन सर मोन्टेगो स्मिथने प्री० कौं० के निर्णयमें (ब मुकदमा शिवसिंहराय ब० मु० दाखो) किया अभी तक न्यायालयोंका उद्देश्य है। तो क्या यह आशा करना कि शीघ्रसे शीघ्र उस बड़ी भूलके दूर करनेके निमित्त, जो न्याय और नीतिके नामसे अनजान दशामें हो गई, सुअवसरका लाभ उठाया जावेगा निरर्थक है ?